प्रकाशक
राजपाल एण्ड सन्ज़
कश्मीरी गेट,
दिल्ली-६

दो शब्द

सन् १९५२ में मैं भारतीय प्रतिनिधि की हैसियत से शान्ति-सम्मेलन मे शामिल होने चीन गया था। वहाँ से मैंने अपने मित्रों-स्वजनो को कुछ पत्र लिखे थे। पत्र पाने वाले सभी प्रकार के व्यक्ति थे—अपने परिवार के लोग, मित्र, सम्बन्धी सरकारी अफसर, कवि, लेखक, उपन्यासकार। कुछ पत्र डाक मे डाले गये, कुछ लिखकर पास रख लिये गये। यह 'कलकत्ता से पीकिंग' उन्ही पत्रो का सग्रह है, उन सभी पत्रो का जो उस काल लिखे गये।

जो देखा वह लिखा, देखा हुआ जितना लिखा जा सकता है उतना। इन पत्रो से पाठको को चीन-सम्बन्धी कुछ जानकारी हुई तो लेखन सफल मानूंगा। पत्रो की पाण्डुलिपि श्री जयदत्त पन्त (अमृत पत्रिका) और मेरे भूतपूर्व सेक्रेटरी श्री राजेश-शरण (चीन मे हिन्दी के लेक्चरर) ने प्रस्तुत की, इसमे उनका आभार मानता हूँ।

४-ए थार्नहिल रोड
इलाहाबाद।

भगवतशरण उपाध्याय

कौलून,
हांगकांग,
२९-९-५२

प्रिय अमनी,

दस्तूर के मुताबिक दौड-धूप। पर आखिर थाइलैंड का 'वीजा' मिल ही गया और आज तुम्हें तीन हजार मील दूर हांगकांग से लिख रहा हूं।

पिछली रात मैंने कलकत्ते में बिताई। रात अन्धेरी थी, बडी मनहूस-सी। पैन-अमेरिकन एयरवेज के दफ्तर से बराबर फोन आते रहे जिससे नींद में खलल पडती रही। ग्यारह बजे ही जहाज दिल्ली से पहुंचने वाला था। वह पहले एक घटा लेट हुआ, फिर दो घटा, फिर तीन। मित्रवर सेक्सरियाजी के यहा से उनकी गाडी में पहले पैन-अमेरिकन एयरवेज के दफ्तर गया फिर वहा से उनकी बस में दमदम। बस सूनी सडको पर तेज भागी। नगर चुपचाप सो रहा था।

पर दमदम अभी तक जहाज की प्रतीक्षा में था। असबाब के दफ्तर से होकर, झल्ला देने वाले कस्टम के अफसरो से तू-तू, मैं-मैं की और तब डाक्टर को स्वास्थ्य का सार्टीफिकेट दिखाकर हम पैसिन्जरों के प्रतीक्षालय में, ठीक जहाज उतरने के मैदान के सामने जा बैठे। घटे पर घण्टा कब से बीत रहा था, बीत चला।

गर्मी बडी थी, बडी उमस। हवा की जैसे सास तक नहीं चलती थी, ललाट पर जो पसीना आया तो वहीं अटका रहा। देर के मारे गर्मी और भी बढ गई-सी लगती थी। माथा जैसे घूम रहा था। रात की मनहूसियत गर्मी को और बढाए दे रही थी। आसमान में कहीं चाद जरूर था, क्योंकि उसकी हल्की पीली रोशनी छिटक रही थी, यद्यपि

थी वह एक दर्जन मोमबत्तियों की रोशनी से भी कम। कुछ एक तारे धीरे-धीरे झिलमिला रहे थे। चादनी के बावजूद आकाश में अधेरा छाया हुआ था, यद्यपि साथ ही अनेक बिजली के बल्ब भी अधेरे से निरन्तर लड रहे थे।

• पाच वजे के करीब जहाज के पहुँचने का सिगनल हुआ और शक्तिमान् पैन-अमरीकी इजन की कानों को बहरा कर देने वाली आवाज भी सुनाई पडने लगी। दिल्ली से आने वाले प्रतिनिधियो में डाक्टर सैफुद्दीन किचलू, डाक्टर अब्दुल अलीम और पार्लमेंट के सदस्य श्री ए० के० गोपालन थे। इधर मेरे साथ कई बगाल के डेलिगेट थे, जिनमें कुछ महिलाएँ भी थीं। जहाज में हम कुल प्रतिनिधि १९ थे।

जहाज कुशादा था। बाहर से भीतर कुछ अच्छा ही जान पड़ा। यद्यपि गर्मी वहा भी थी, पर वहा की गर्मी कुछ ऐसी बेजा भी नहीं लगी। बदस्तूर गडगडाहट, पेटी लगाने का सिगनल, सुन्दर होस्टेसो की फुसफुसाहट, एक धक्का, एक झोका और एक प्रकार की पेट में सनसनाहट। जहाज जो शून्य में कूद चुका था, अन्तरिक्ष में उडा जा रहा था। प्लास्टिक मढी खिडकी से जो बाहर देखा तो उस महानगर की बुर्जियां, मन्दिर, खम्भो की कतारें, महल-कगूरे दृष्टिपथ में विलीन होते जा रहे थे। धीरे-धीरे वे दूरी में खो गए।

पूरब में आग लग गई थी। गोल अगारा दिशाओं में अग्नि के तीर मार रहा था। प्रकाश जब फैलने लगता है, फिर रोका नहीं जा सकता। अपने ग---न करो से वह अंधकार में पैठ उसकी गहराइयों को आलोकित कर देता है। प्रकाश का यह पुञ्ज क्या हमारे देश का स्पर्श न करेगा?—मेरे भीतर आवाज उठी—और उस गलीज को जला न देगा जो उसके सुन्दर चेहरे को बदसूरत बनाता रहा है?

विचारो को पख लग गए। मेरे अतर को वे ले उडे। जहाज की ही गति की भाति मे-ा मन भी भौतिक सीमाओं को लाघ चला। नीचे युद्ध-विगलित ससार—सयुक्त-राष्ट्र-सघ का मजाक, कोरिया की कुचली मानवता, वियतनाम का मरणान्तक सघर्ष, मलाया में साम्राज्यवाद की सडी जडो को फिर से रोपने की कोशिश, केनिया में विकराल अत्याचार, दक्षिण अफ्रीका में जाति-विरोधी कानूनों का घिनौना प्रयोग, ट्यूनीशिया का अदम्य विद्रोह, ईरान में जानबुल का वुद्धूपन और पार्तोरीका में अंकिल सैम की मूर्खता, एशिया और दक्षिण अमेरिका के नम्बर चार योजना के फौलादी शिकजे से छूटने के भगीरथ प्रयत्न और अब यह अभी हाल का 'कम्यूनिटी प्रोजेक्ट' (गाव सुधार) जो अपने देश की कुआंरी जमीन पर कास घास की भाति छाये जा रहा है।

अन्त में मेरे विचार आगामी पीकिंग शाति-सम्मेलन पर जा लगे। अनेक सरकारो ने—कुछ ने अपनी रुचि से, कुछ ने एक प्रबल शक्ति के दबाव के कारण—अपनी जनता के उन चुने हुए प्रतिनिधियों को पासपोर्ट देने से इन्कार कर दिया था जो शाति-सम्मेलन में शामिल होने वाले थे। स्वय हमारी सरकार ने काफी बाद में कुछ नरमी दिखाई और उनके साथ बेहतर सलूक किया, पर केवल बेहतर,

जो इन्सान की महान् विरासत की रक्षा और प्रगति के लिए अनिवार्य है !

उससे शर्म क्यो ? क्या शाति इस या उस देश की है और उसके अनेक रूप हैं ? क्या शाति आशिक है, अखण्ड नही ? फिर उसकी रक्षा परिभाषाओं के साथ क्यों की जाय ? युद्ध जीवन-शक्ति का शत्रु है, यही कहकर युद्ध का प्रतिकार और शाति की उपासना क्यों न हो ? हा, हमारी सरकार ने भी जैसा अभी कह चुका हूँ, 'केवल औरो से बेहतर' सलूक किया। मानसपथ में घटनाओ की बाढ-सी आ गई—स्वाधीनता के लिए हमारा सघर्ष, उस दिशा में हमारे निरन्तर बलिदान, अत्याचारो का मरणान्तक विरोध, साहसपूर्ण नेतृत्व, गांधी और नेहरू—एक शाति और अहिंसा का पुजारी, दूसरा अनुपम निर्भीकता का प्रतीक, सहज गतिशीलता की मूर्ति।

गतिशीलता नेहरू मेरे विचार बस यही थम गए। नेहरू जगत के देशप्रेमियो का प्यारा, भारतीय मानवता की इस सरकार में एकमात्र आशा और प्रकाश। नेहरू, जो भेरीनाद सुनकर युद्ध से दूर नहीं रखा जा सकता है, घमासान के बीच जिसका स्थान है। नेहरू, जिसकी उत्कट आशावादिता गिरे हुओ में सास फूंकती है, जिसका विश्वास बुझे दीपक की लौ जला देने की शक्ति रखता है, जिसका नाम गतिशीलता का पर्याय है।

चित्त की क्रान्तिकारी भावना निष्क्रिय हो जाती है यदि उसका सम्पर्क अपने उस उद्गम से टूट जाय महान् नेहरू के बावजूद सरकार का जनसत्ताक सम्पर्क उस उद्गम से टूट गया जो उसकी गतिशीलता का आदि बिन्दु होता और उसे सतत सक्रिय रखता। गतिशील पिण्डो का स्वभाव कैसा होता है ? जब गतिशील व्यक्तित्व अपना सबध गतिहीन पिण्ड से जोडता है तब दो में से एक परिणाम होकर ही रहता है। या तो वह उस गतिहीन पिण्ड में क्रान्ति उपस्थित कर उसे बदल देता है या यदि वह पिण्ड सर्वथा भारी हुआ, तब धीरे-धीरे उसके साथ समझौता करता वह स्वय विनष्ट हो जाता है। गतिहीन सरकार भ्रष्टाचार, दीर्घसूत्रता और अतिव्ययता का केन्द्र हो जाती है। ये दुर्गुण यदि तत्काल नष्ट नहीं कर दिए जाते तो राजरोग की भाति बढकर शासन को ही लील जाते है। जो लोग महान् नेता के इर्द-गिर्द मडराते रहे थे, स्वाधीनता के सघर्षकाल से ही उनकी आखें दूर के लाभ पर टिकी थी। वस्तुत उन्होंने अपने प्रयत्नो की बाजी लगाई थी और अब पौ-बारह होने पर उन्होंने अपना लाभ हथियाना चाहा। उन्होंने पहले याचना की, फिर मागा और अन्त में झपटकर अपने विजयी कप्तान के हाथ से लाभ के पद छीन लिए। और धीरे-धीरे शासन के शरीर पर वे नासूर की तरह फैल गए। परिणाम हुआ विधिवत अराजकता, यान्त्रिक अराजकता। पण्डित नेहरू का काग्रेस की बागडोर हाथ में ले लेना उस नैतिक ह्रास को अघोष ले चला, क्योंकि एकमात्र सस्था जिसे उनके विरोध का आंशिक अधिकार प्राप्त था और जो किसी हद तक शासन के कृत्यो की आलोचना कर सकती थी, उस नेतृत्व से शासन और आलोचक पार्टी का नेतृत्व समान हो जाने से, निरर्थक हो गई, सर्वथा निष्क्रिय। फिर भी नेता की आत्मा जागती थी क्योंकि उन असख्य अनाचारो पर अक्सर वह ज्वाला उठता था जो उसके शासन की चूलें बडी तेजी से ढीली कर चले थे। अब नेता इसी बीच प्रौढ़ हो गए, मँज गए। आज के पार्लमेन्टरी शासन का एक अपना राज है। वह राजनीतिज्ञ को माज देती है पका देती है, उसे स्टेट्समैन बना देती

जो इन्सान की महान् विरासत की रक्षा और प्रगति के लिए अनिवार्य है !

उससे शर्म क्यो ? क्या शाति इस या उस देश की है और उसके अनेक रूप हैं ? क्या शाति आशिक है, अखण्ड नही ? फिर उसकी रक्षा परिभाषाओं के साथ क्यो की जाय ? युद्ध जीवन-शक्ति का शत्रु है, यही कहकर युद्ध का प्रतिकार और शाति की उपासना क्यो न हो ? हा, हमारी सरकार ने भी जैसा अभी कह चुका हूँ, 'केवल औरो से बेहतर' सलूक किया। मानसपथ में घटनाओं की बाढ-सी आ गई—स्वाधीनता के लिए हमारा सघर्ष, उस दिशा में हमारे निरन्तर बलिदान, अत्याचारो का मरणान्तक विरोध, साहसपूर्ण नेतृत्व, गाधी और नेहरू—एक शाति और अहिंसा का पुजारी, दूसरा अनुपम निर्भीकता का प्रतीक, सहज गतिशीलता की मूर्ति।

गतिशीलता नेहरू मेरे विचार बस वहीं थम गए। नेहरू जगत् के देशप्रेमियों का प्यारा, भारतीय मानवता की इस सरकार में एकमात्र आशा और प्रकाश। नेहरू, जो भेरीनाद सुनकर युद्ध से दूर नहीं रखा जा सकता है, घमासान के बीच जिसका स्थान है। नेहरू, जिसकी उत्कट आशावादिता गिरे हुओ में सास फूंकती है, जिसका विश्वास बुझे दीपक की लौ जला देने की शक्ति रखता है, जिसका नाम गतिशीलता का पर्याय है।

गतिशीलता !—आशा है यह शब्द तुम्हें विमन न कर देगा। निर्दोष है यह शब्द, जीवन का पर्याय। मृत्यु की प्रतिकूल शक्ति है यह, प्रगति का परिचायक। अन्तर्मुखी वृत्ति का विरोधी है इस शब्द का अन्तरग, जो प्रणाली का गलीज साफ कर प्रवाह अविरल कर देता है। परन्तु स्वय गतिशीलता को जीवित रखने के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने आदिम उद्गम अर्थात जनसत्ताक प्रेरणाओ से अपना शाश्वत आहार और पेय ग्रहण करती रहे। चित्त की क्रान्तिकारी भावना का अटूट रूप इसकी रक्षा के लिए कायम रहना आवश्यक है। परन्तु स्वय

चित्त की क्रान्तिकारी भावना निष्क्रिय हो जाती है यदि उसका सम्पर्क अपने उस उद्गम से टूट जाय महान् नेहरू के बावजूद सरकार का जनसत्ताक सम्पर्क उस उद्गम से टूट गया जो उसकी गतिशीलता का आदि विन्दु होता और उसे सतत सक्रिय रखता। गतिशील पिण्डो का स्वभाव कैसा होता है ? जब गतिशील व्यक्तित्व अपना संबंध गतिहीन पिण्ड से जोडता है तब दो में से एक परिणाम होकर ही रहता है। या तो वह उस गतिहीन पिण्ड में क्रान्ति उपस्थित कर उसे बदल देता है या यदि वह पिण्ड सर्वथा भारी हुआ, तब धीरे-धीरे उसके साथ समझौता करता वह स्वयं विनष्ट हो जाता है। गतिहीन सरकार भ्रष्टाचार, दीर्घसूत्रता और अतिव्ययता का केन्द्र हो जाती है। ये दुर्गुण यदि तत्काल नष्ट नहीं कर दिए जाते तो राजरोग की भांति बढकर शासन को ही लील जाते हैं। जो लोग महान् नेता के इर्द-गिर्द मडराते रहे थे, स्वाधीनता के संघर्षकाल से ही उनकी आंखें दूर के लाभ पर टिकी थी। वस्तुत उन्होने अपने प्रयत्नो की बाजी लगाई थी और अब पौ-बारह होने पर उन्होने अपना लाभ हथियाना चाहा। उन्होने पहले याचना की, फिर मांगा और अन्त में झपटकर अपने विजयी कप्तान के हाथ से लाभ के पद छीन लिए। और धीरे-धीरे शासन के शरीर पर वे नासूर की तरह फैल गए। परिणाम हुआ विधिवत अराजकता, यान्त्रिक अराजकता। पण्डित नेहरू का कांग्रेस की बागडोर हाथ में ले लेना उस नैतिक ह्रास को अबोध ले चला, क्योंकि एकमात्र संस्था जिसे उनके विरोध का आंशिक अधिकार प्राप्त था और जो किसी हद तक शासन के कृत्यो की आलोचना कर सकती थी, उस नेतृत्व से शासन और आलोचक पार्टी का

है। नौकरशाही के विधि-विधानों से जकडा वह मजना-पकना प्रौढ़ता का परिचायक मानने लगता है। उस स्थिति की यही विडम्बना है, गूढ़ व्यग्य। तेली के बैल की नाई अब वह चक्करदार राह में घूमता है और उस घूमने को वह प्रगति मानता है। शक्ति और प्रगति में भेद वह नहीं समझ पाता। वह अपना दृष्टिकोण सर्वथा शुद्ध मानता है, केवल उसी का वह कायल है क्योंकि वह अपने को आप से पृथक् कर नहीं देख पाता। आलोचना उसे असह्य हो उठती है। आत्मालोचना से वह घृणा करता है।

उस सरकार में बस एक ही तत्व है–पडित नेहरू पण्डितजी शाति के प्रेमी है। उनकी वैदेशिक नीति, जहा तक शान्ति का प्रश्न है नितान्त स्पष्ट वह जगबाजो के दुश्मन हैं। ससार में शायद आज दूसरा व्यक्ति नहीं है। जिसने शान्ति की रक्षा के लिए इतने प्रयत्न किये हो जितने प० नेहरू ने। स्तालिन और एचेसन को लिखे उनके पत्र (जिनमें से एक ने उसका स्वागत किया था दूसरे ने अनादर), सैंफ्रान्सिस्को की साम्राज्यवादी सधिपत्र पर हस्ताक्षर करने से इकार, युद्ध को अवैधानिक करार देने के लिए पाच शक्तियो की शाति सधि के लिए उनका प्रयास, सभी उस दिशा में पडित जी की शाति-बुद्धि का परिचय देते हैं।

प्रिय अमनी, इस प्रकार मेरा मन देर तक विचारो की दुनिया में भटकता रहा। विचार इतना शक्तिमान् होता है कि जब वह भीतर गरजने लगता है तब बाहर की दुनिया के प्रति मनुष्य सर्वथा बहरा हो जाता है। कह नहीं सकता कि कैसे मेरा स्वप्न टूटा। शायद खिडकी से आने वाली गरम धूप के स्पर्श से, शायद पाइलट की घोषणा से, परन्तु निश्चय इजन की आवाज से नहीं, क्योंकि वह कभी बन्द न हुई थी, सदा मेरे कानो में अपनी निरर्थक गरज गुजाती रही थी।

तो हम तीन घटे से अधिक उडते रहे थे। बगाल की खाडी पार कर हम बर्मा लाध चुके थे और अब थाइलैंड के ऊपर उसकी राजधानी बैंकाक के निकट मडरा रहे थे। जहाज हल्के में उतर पडा।

किसी ने हमारे पासपोर्ट इकट्ठे कर लिए और आध घटे के लिए हम उतर पडे। स्टेशन के प्रतीक्षालय को जाते हुए हमें एक-दूसरे का परिचय मिला। डाक्टर किचलू से मेरी मुलाकात न थी, न श्री गोपालन से ही, जिन्होंने अभी हाल ही विवाह किया था। डाक्टर अलीम पुराने मित्र हैं। तुम्हें याद होगा, जयपुर पी ई एन कान्फ्रेन्स के समय अम्बर के किले में एक सज्जन मिले थे जिनकी नुकीली दाढी को तुमने 'लेनिनिस्ट बेयर्ड' कहा था। हा डाक्टर अलीम की लेनिनिस्ट दाढी है और लेनिन के अनुकूल ही उनकी विचारधारा है, और लेनिन की ही भाति उनके सिर के बाल भी अब इतने उड गए हैं कि उन्हें एक अश में गजा कहा जा सकता है।

प्रतीक्षालय में अनेक प्रकार के पेय रखे थे, शराब, वर्मूथ, कोकाकोला और मेरा अपना सादा पेय, चाय और काफी। मुह-हाथ धोकर मैंने चाय का एक प्याला पिया। फिर हम जहाज में जा बैठे। साढे १२ बजे लच जहाज में ही परसा गया। जहाज प्राय १३ हजार फीट की ऊँचाई पर तीन सौ मील प्रति घटे की गति से भागा। हम आदिम जगलो, वन-मण्डित पर्वत-श्रेणियो, गहरी घाटियो के ऊपर उड चले। फिर सहसा उत्तर की ओर घूम हमारा जहाज हिन्द-चीन को लांघता हुआ तोंकिन की खाडी के ऊपर से हैनान द्वीप और चीनी प्रायद्वीप के बीच होता दक्षिण चीनसागर के ऊपर चला।

हम भारतीय समय के अनुसार साढे तीन बजे हागकाग के जहाजी अड्डे कौलून में उतरे। घडी की सूइया करीब चार घण्टे आगे कर देनी पडी। बदस्तूर कस्टम्स, यद्यपि अपने देश की तरह अभद्र नही, आयात अफसर और पुलिस। फिर पत्रकारो का सामना, उनके कैमरो की क्लिट्-क्लिट् और अत में लिमोजीन मे चढकर कौलून होटल।

पत्र, अमनो, डरावना हो चला है, लम्बा। शायद मेरी राजनीति भी। समाप्त करता हूँ।

के चारो ओर से भेदभरी पहाडियो से घिरा है। उस एक ओर, खाडी के पार, घाटो के किनारे और सामने की ढालुवा पहाडी भूमि पर इस दक्षिण समुद्र का सुन्दर सन्तरी हांगकांग खडा नवागत को बुला रहा है। मुझे जाना ही होगा, खाडी पार।

तुमको और रवि को स्नेह।

श्रीमती ए सी देवकी अम्मा,
प्रिंसिपल, बिडला कालेज,
पिलानी, राजस्थान।

तुम्हारा,
भगवत

कौलून (हांगकांग),
२०-९-१९५२

प्रियवर

प्राय नौ घंटे अविराम उड़कर कल शाम कलकत्ते से कौलून पहुँचा। कौलून हांगकांग का हवाई अड्डा है, जहाजों का स्टेशन।

तीन ओर पहाड़ियों से घिरा कौलून अत्यन्त सुन्दर है। एक ओर समुद्र है, उस खाड़ी का भाग जो इसे अश-मेखला की भांति घेरे हुए है। खुले समुद्र की राह उसी ओर से है। खाड़ी की हल्की धाराएँ उस नगर और सामने के द्वीप हांगकांग के बीच टूटती-बिखरती हैं। पानी का यह कोना जैसे चुपके से पहाड़ों के बीच घुस आया है, हांगकांग में अंग्रेजी साम्राज्य की भांति। जल गदला है, नीला-गदला, इससे कि उस पर दिन-रात असंख्य नावें चलती रहती हैं, घाट के स्टीमर अविराम खाड़ी लांघते रहते हैं। खाड़ी के इसी गदले जल ने निःसन्देह हांगकांग को द्वीप बनाया है, उसे महान् पत्तन और व्यस्त बन्दर का पद प्रदान किया है।

हांगकांग, कौलून और उससे लगा भूभाग अंग्रेजी अमलदारी में है। हांगकांग अन्तर्राष्ट्रीय बन्दर है, माल के यातायात में आजाद, कर से मुँह चुरानेवालों का स्वर्ग। खाड़ी के शान्त वातावरण में, उसके दूर के पहाड़ी कोनों-अन्तरों में माल उतार लेने, उतार देने का बड़ा मौका है। और लोग इन मौकों से लाभ उठाने से चूकते भी नहीं। इस घटिया किस्म का, पर अत्यन्त लाभकर, व्यापार करने वालों की तादाद हांगकांग में काफी है।

हॉंगकॉंग और कौलून की सम्मिलित जनसख्या प्राय पचीस लाख है। आबादी प्रधानत चीनियो की है। उनके अतिरिक्त वहा अधिकतर सौदागर हैं। फिर चीन से भागे सरमायेदार, तवायफें, आने-जाने और मुस्तकिल तौर से रहने वाले फौजी और नौसैनिक। किस प्रकार इगलैंड ने प्रकृति की इस सुन्दर विभूति और महान् बन्दर पर अधिकार कर लिया, वह कहानी और है। वह तभी तक विदेशी सत्ता का केन्द्र बना रह सकता है, जब तक कि जन-शक्ति-राशि महाकाय चीन चुप है और उधर सरक नहीं आता। या तब तक, जब तक कि यह अग अपने प्राकृतिक पिण्ड की ओर स्वत आकृष्ट नहीं हो जाता।

हवाई यात्रा सुखद रही। पर नौ घटे खुली हवा से अलग, जहाज के भीतर बन्द रहने से जी ऊब गया। खाडी के तट पर दौड चलने की इच्छा बलवती हो उठी। होटल से तीर की तरह भागा। चौडी सडक पर चल पडा। चुपचाप, बिना पथप्रदर्शक के, बगैर नक्शे के। तत्काल उनकी मुझे आवश्यकता भी न थी, क्योंकि हॉंगकॉंग आंखो के सामने था, पहाडी ऊचाइयो पर बिखरा। उसे और पास से देखने चल पडा था, तेज।

सोचा, जब उस पार का महानगर इतना निकट दिख रहा है तब घाट भी दूर नहीं हो सकता। अनुमान सच निकला। कुछ मिनट की गति, फकत फर्लांग भर, और मैं जा खडा हुआ समुद्र के किनारे।

समय सूर्यास्त का था। सैर करने वालों की भीड सामी थी। आवारागर्दी का आलम था। भीड निरुद्देश्य नजरो से मुझ अजनबी को झाकती, घूरती पास से निकली जा रही थी। बातों की आवाज और पैरो की चाप, लहरों की ध्वनि ,से ऊपर उठ आती थी। दल के दल मर्द तट तक फैले खडे थे। औरतें उनके बीच कतराती हुई घुसतीं और इठलाती-बलखाती दूसरी ओर निकल जातीं। भिखमगे रह-रहकर अपने कापते हुए हाथ बढा देते, जो सदा कापते ही नहीं थे, और जिनसे जेबो का खासा अदेशा भी था। घिनौने लालची भिखमगे, बडे और बच्चे, मरमा

मुह की चेष्टा बिगाड ओठो को बिचका देते, गिडगिडाकर हाथ फैला देते। एक लडके ने, जिसकी पीठ पर एक बच्चा बंधा हुआ था, हाथ फैला दात निपोरकर मुझसे अंग्रेजी में कहा—'नो पापा, नो मामा' (न बाप है न मां)। हांगकांग के भिखमगे भयानक हैं। आप झल्ला उठें, लाख झिडकें, तडपे, पर वे पिण्ड न छोडेंगे, कम्बख्ती के शिकार, इन्सानियत के पाप! सहसा, निमिषमात्र में सूरज डूब गया। रात की पहली छाया कांपती हुई चराचर के ऊपर से निकल गई—एक श्यामल नीलाभ रेखा वायु के हलके झकोरे से बोझिल!

पहाडी ढाल पर बने खाडी पार के मकानो के असख्य दीप सहसा जल उठे। दीप वहां पहले भी थे, शायद सूरज डूबने के पहले भी, और जल भी रहे थे, केवल ग्रहपति के हतप्रभ होते ही उनकी पीली किरणो ने उन असख्य विद्युत् तारको को मलिन कर दिया था। रात्रि ने अभी अपना श्याम वसन धारण नही किया था, जिसने विद्युत-प्रकाश म्लान थे, पागल की दृष्टि-से—रिक्त।

उमडती भीड को चुपचाप देख रहा था। अनेक राष्ट्रो के लोग उसमें थे—चीनी, मलयवासी, इन्डोनेशी, विदेशी पर्यटक—श्वेत, पीले, गेहुंए, चमचमाते रेशमी सूट पहने, विशेषत चीनी, पश्चिम से प्रभावित। उनके विपरीत थे थे पैबदभरे कपडे पहने, डरते फिरते, सूनी नजरें फेंकते, भिखमगो सरीखे, पर भिखमगे नही। फिर सैनिक, ब्रिटिश और अमरीकी। कुछ वे जो कोरिया के मोर्चे पर जा रहे थे, कुछ वे जो उस मोर्चे से दम लेने लौट रहे थे। नौसैनिक हाथ में हाथ दिये शराब की गन्ध से हवा गन्दी करते, फूहड गाने गाते, बदतमीज, खतरनाक, कुछ भी कर बैठने वाले।

खम । दूसरी ओर दृष्टि आकृष्ट हुई । उसने सागर-हरित झीना वस्त्र पहन रखा था जिसके किमखाब में ईरिस के फूल कढे थे। मानिक जडे सोने का पिन कन्धे का कपडा चूनट में कसे हुए था और कपडा चूनी चादर की भाति लटक रहा था । शरीर का दाहिना भाग चमकती मेखला की तरह खुला था । नीचे फिर एक तग अधोवस्त्र नीचे तक बगल में कटा हुआ जो कदम-कदम पर खुलता और बन्द होता था । उसके पास जो वह दूसरी खडी थी, प्राय उतनी ही कमनीय थी । वस्त्र उसका तेहरी मलमल का था, धारिया लिये । पुरातत्व के अध्ययन में नग्न मूर्तिया देखते रहने का अभ्यास होने से निरावृत नारी को आवेगरहित हो देख सकता था ।

एक हिली, पीछे की ओर फिरी । लगी चीनी ही, पर दूर दराज की-सी अभिराम सकर, निष्कलक सुन्दर । दूसरी के नक्श भी तीखे, अनुपम सुन्दर, शायद पिछली ही पीढ़ी में यूरोपीय स्खलन का मूर्त परिणाम । पहली के वस्त्रो का कटाव असाधारण था, चीनी किसी प्रकार नहीं । नितान्त एक से बने वस्त्रो के उस जगल में सर्वथा अनूठा । किसी ने धीरे से कहा (शायद मेरे ज्ञान के लिये)—'वेश्याएँ !'

सो वेश्याएँ थीं वे । हागकाग की दस हजार रजिस्टर्ड वेश्याओ में से दो, पचास हजार अलिखित वेश्याओं में से और उनसे भिन्न जो शघाई से भाग आई हैं । पाप की साकार परिणति वे अपने कोठों पर, हागकाग के वेश्यालयो, होटलों, सरायों, भट्टियो में अपना घृणित रोजगार चला रही हैं । जाननेवालों का कहना है कि ढलती रात सडक पर चलने वाले अगर सावधान न हों तो तवायफों का उन्हें उडा ले जाना कुछ अजब नहीं !

साझ अब भी रात नहीं हो पाई थी । गर्मी का उजाला कुछ ऐसा होता है कि साझ का धुधलका उनमें देर तक उलझा रहता है । धूमिल तारे, आकाश में निष्प्रभ, धीमे झिलमिला रहे थे । इतने धीमे कि रात नक्षत्रहीन लगती थी—नक्षत्रहीन, चन्द्रहीन, निरभ्र ।

मैं भीड के बीच खडा था। या शायद लोगो के धीरे-धीरे पास बढ आने से भीड के बीच हो गया था। भीड चुप खडी न थी, हिल-डुल रही थी। उसकी गति ने मुझे अपने वातावरण से सचेत कर दिया। वातावरण जो उल्लसित नादमय था। मैं अपने साथियो के बीच से भाग आया था। उसकी सुधि आई तो होटल लौट पडा। डाक्टर किचलू अब भी प्रेस-कान्फ्रेंस में पत्रकारों के प्रश्नों का उत्तर दे रहे थे।

जल्दी में संक्षिप्त स्नान। शीघ्रता से नीरस भोजन। हल्की प्रेस इन्टरव्यू।

थका न था, पर बिस्तर जैसे पुकार रहा था। किन्तु हागकाग का आकर्षण अधिक सम्मोहक था। कमरे के साथी श्री गुट्टुपल्ली अपने स्थानीय चीनी मित्र श्री वाग के साथ कभी से घूमने निकल गए थे। तभी डाक्टर अलीम ने नीचे से फोन किया। खाडी पार हागकाग जाने को बुलाया। उसका मोह दवा न सका। कूदकर लिफ्ट में जा खडा हुआ और क्षण भर में नीचे चौडी सडक पर डाक्टर अलीम और दूसरे मित्रो के बीच।

साथ एक स्थानीय सज्जन थे—हमारे गाइड, चीनी सरकार के प्रतिनिधि। स्टीमर के घाट पर पहुँचे। स्टीमर बराबर चलते रहते हैं, हर पाच-दस मिनट पर। पहुँचते ही स्टीमर मिला। भीड के साथ-साथ सरकते उस पर चढ़े। बीच में एक बडा हाल, जिसमें सिगरेट पीना मना। आगे-पीछे एक-एक खुले मैदान सी जगह। बाहर ही बैठे, क्योंकि साथियो को सिगरेट पीनी थी। विशेषत डा० अलीम तो सिगरेट के आदी हैं।

भवनों में, उनके शिखरों-बुर्जियों पर, ऊंचाईयों, गहराइयों में चमक रहे थे। रात, जो अब तक गहरी हो चुकी थी, प्रकाश के बहते सागर में नहा रही थी। सामने जलवर्ती भूमि पर दूकानों की कतार थी। उनके साइन-बोर्ड निरन्तर जलते-बुझते बल्बों से दमक रहे थे।

देर तक हमलोग तटवर्ती प्रशस्त राजमार्ग पर घूमते रहे।

तट से लगा चौड़ा रास्ता ऊर्ध्व दूकानों के नीचे से चला जाता है। दूकानों में 'पांचों दुनियां' का माल ठकचा हुआ है, वे सारी चीजें जिन्हें मनुष्य की सूझ और हिकमत ने मुहैया किया है। उनकी कतारों में, जो पच्छिम के नवीनतम से नवीन लगती हैं, वह सब कुछ प्राप्य है जो व्यापार समुद्र पार से लाता है। सब कुछ, कड़ा से कड़ा चमड़ा, चीर देने वाले तेज खजर से लेकर कोमल-से-कोमल त्वचा को कोमलतर कर देने वाले शीतल प्रसाधन-द्रव्य तक। हांगकांग के जीवन के ये दोनों ही प्रतीक हैं, उसकी क्रूरतम हत्या के, मृदुतम कमनीयतम प्राणों के।

हम चहलकदमी करते रहे। सामने दूर निकल आते, पीछे लौट पड़ते, उस अमित वैषम्य को निहारते, उस वैपुल्य और दारिद्र के बीच, वैपुल्य के बीच दारिद्र, जहां छैले भिखारियों से कन्धे रगड़ रहे थे, जहां किलकारियों की कोख से टीस निकल पड़ती थी। आंखें चौंधियां देने वाली चमक, बेदाग साफ आकृतियां और उन्हीं के बीच अंधेरी रात से काले, घिनौने गन्दे बिसूरते इन्सान, कलपते कोयले से काले कुली। हम देखते-फिरते रहे। दृश्य का प्रभाव कभी हमारी आवाज ऊंची कर देता, कभी धीमी।

रात चढ़ती जा रही थी। धीरे-धीरे भीड़ भी छंटती जा रही थी। लोग घरों को लौट चले थे। केवल पियक्कड़ सैनिक और माझी-फौजी गाली बकते फिर रहे थे।

रह-रह कर सीटी बजा देते, बीच सड़क पर एक-दूसरे से टकरा जाते, चूमने लगते। 'टामी' नाचते, कप करने लगते। 'वेटरन' किलकारियां भरते, कहकहे लगाते, किसी को बेआराम कर देने को, निमौत वार देने

को, छुरा भोक देने को तैयार। औरतो को जहा-तहा छेड देते, आवाजें कस देते, लोग चुपचाप मुस्करा कर, तरह देकर, जैसे पागलो को देते है, चले जाते। यह हागकाग है, कुछ भी हो सकता है, रोज एकाध खून होते रहते हैं। हम भी लौट पडे। सुबह दस बजे ही कान्तोन के लिए ट्रेन में रवाना होना था। सोचा, तडके एक बार और घाट की ओर निकल आऊँगा।

सीधा खाट पर जा पडा—बिस्तर पुकार रहा था। ग्यारह बज चुके थे। लेटते ही नींद लग गई।

उन्निद्र का रोगी हूँ। साधारणतया नींद नहीं आती। पर आज की रात सोया, खासी गहरी नींद। नींद सहसा खुल गई। घडी में देखा तो चार बज चुके थे। बाहर चिडिया चहचहा रही थीं। खिडकी के नीचे सडक पर औरतो की आवाज, तीखी घुघरदार हँसी, टकरा कर गूज रही थी।

गुटुपल्लो खर्राटें भर रहे थे। पर मुझे तो घाट बरबस खींचने लगा। उठा और आध घटे में ही बाहर निकल गया।

घाट प्राय निर्जन था। नगर प्रभात के उस पिछले पहर की मादक नींद में विभोर था, जब 'पुन पुनर्जायमाना पुराणी' सतत किशोरी उषा चराचर की आँखो पर जादू डाल देती है, जब उसके स्पर्श से स्वप्नों का सम्मोहक संसार सिरज उठता है।

वातावरण शान्त था। शान्ति के सिवा जैसे किसी अन्य का अस्तित्व न था। जहाज नीडस्थ निद्रित पक्षियो की भाति घाटो पर बँधे पानी पर डोल रहे थे।

उगते हुये सूरज को देखते ही याद आई कि दस वजे की गाडी से कान्तोन जाना है। भागा होटल, लोग उठ चुके थे, नहा-धो रहे थे। म भी अपनी विखरी चीजें सम्हालने, पैक करने लगा। फिर अपने बक्से बाहर खडे आदमी के सुपुर्द कर आपको लिखने बैठ गया। अभी ट्रेन में तीन घटे और हैं और मै यह अमूल्य समय नष्ट करना नहीं चाहता, न यहा, न ट्रेन में। इसलिये इन तट की देखी चीजो का ब्यौरा पहले, वाद में उस दृश्य का आनन्द जिसकी आशा, ट्रेन में बैठ जाने पर, दिखाई गई है।

घटे भर में मै भी तैयार हो गया।

अब खत्म करता है। तैयार होने स्टेशन चलने का शोर कानो में भरने लगा है, गुट्टपल्ली मुझे कलम रोकने को मजबूर किये दे रहे हैं।

अलविदा! सबको प्यार—आपको, कान्ता को, दूसरे बच्चो को।

स्नेहाधीन
भगवतशरण

श्री बद्रीविशाल पित्ती,
मोतीभवन,
हैदराबाद, भारत।

के साथ अधिक यातायात प्रोत्साहित करती है और न चीन ही अपने आक्राता के साथ मैत्री का विशेष इच्छुक है। इससे मुसाफिरों का आना-जाना दोनो ओर कम ही होता है, यद्यपि दोनो के बीच व्यापार प्रचुर मात्रा में होता है।

हमारा सामान पहले ही प्लेटफार्म पर पहुँच चुका था और अब तौला जा रहा था। इस बीच हम इधर-उधर बेफिक्र फिरते और चन्द दोस्तों से विदा लेते रहे जिनसे परिचय हाल ही हुआ था। एक भारतीय सज्जन, जो सिन्धी सौदागर थे और हांगकांग में ही बस गए थे हमारे पास आकर अनेक विषयो पर बात करने लगे। उनसे मालूम हुआ कि वे हांगकांग में बहुत दिनो से रह रहे हैं और कि उनके से अनेक अन्य भी हैं जिनका रहना वहां एक अर्से से हुआ है। हमने स्वयं कौलून में अपने होटल के पास ही अनेक सिन्धी दूकानें देखी थीं जो खूब चल रही थीं। बाजार सुस्त न था यद्यपि दूकानदारो का कहना था कि बिक्री में मन्दी आ गई है। इन सिन्धी सज्जन से मालूम हुआ कि हांगकांग में हिन्दुस्तानी सौदागरों की संख्या खासी है, उनके परिवार वालों को लेकर हजार से भी ऊपर। उन्होंने बताया कि बँटवारे के बाद हिन्दुस्तान से आने वालो की एक बाढ़-सी आ गई है। अनेक सिन्धी स्वदेश में सन्दिग्ध जीवन की टोह में इधर-उधर न फिरकर सीधे हांगकांग चले आए है।

पुलिस की चौकसी के बावजूद भी भिखमगे प्लेटफार्म पर घुस आए थे और बार-बार हमारी बातचीत में विघ्न डाल रहे थे।

का प्रयत्न कर रहे थे जिनका अस्तित्व आर्थिक स्थिति अपने कारणों से स्थायी बनाती जा रही थी, तत्सम्बन्धी कानून जिसे पनपने और फैलने के लिए विशेष भूमि तैयार करता जा रहा था।

गाड़ी पौन्तून से दस बजे छूटी। गद्दीदार सीटें आरामदेह थीं और यूरोप की गाड़ियों की तरह डब्बों की खिड़कियां लम्बे-चौड़े शीशे की थीं जिन्हें ऊंचा-नीचा किया जा सकता था। परन्तु डब्बे निस्सन्देह उनसे कहीं अधिक साफ थे और उन्हें साफ रखने की बराबर कोशिश की जा रही थी। रेलवे अफसर ने सहसा प्रवेश किया और हमारे टिकट देखे। एक खोन्चे वाला, पर ऐसा नहीं जैसे अपने स्टेशनों पर चीखते फिरते हैं, भीतर [illegible] बेंत की बाल्टियों में सुन्दर नारंगियों और [illegible] से भरे ठंडे बोतल रखे गुजर गया, हमारी ओर शिष्टता से देखता, जिन्होंने मांगा उन्हें नारंगी या बोतल देता।

बली सी मच गई। हम उस देश के निकट पहुँच रहे थे जो हममें से अनेक के लिए स्वप्न-देश रहा था। देश जो इधर फहड और कमीने प्रोपेगण्डा का शिकार बनाया जा रहा है। ब्रिटिश जमीन पर आखिरी रेलवे स्टेशन शुनचिन है वसे ही जैसा चीन का पहला स्टेशन लोवू। ब्रिटिश अमलदारी और स्वतन्त्र चीन को एक तग नाला अलग करता है, नाला, जो वस्तुत बरसाती पतली नदी है और आजकल सूख गई है। उस नाले के दोनो ओर तार खिचे हैं, जाल बुने हुए तार, कँटीले और सादे हथियारबन्द सैनिक दोनो ओर खडे अपनी-अपनी सीमा की चौकसी करते हैं। उसे देख मुझे तत्काल एक दूसरी सीमा की याद आई। दूर दूर पश्चिम इजरेल में जिसे मैंने १९५० की अक्तूबर में देखा था। अरबों और यहूदियो की पारस्परिक शत्रुता भयानक रूप धारण कर चुकी थी। बेथलहम के निकट, जायन पर्वत पर, और जार्डन के पार सीरिया की सीमा पर यह शत्रुता पागलपन का रूप धारण कर चुकी थी और यदि उस सीमा पर कोई अपनी पूरी ऊँचाई मे खडा होना चाहता तो कुछ अजब नहीं कि परवर्ती गोली तत्काल उसकी कपालक्रिया कर देती। यहाँ लोवू में इस प्रकार का वातावरण नही था। दोना ओर सीमाए खुली है और भरी मालगाडियाँ निचे लकडी के अवरोधो के पार तख्तों के पुल से नाले के ऊपर आती रहती हैं। वह स्वतन्त्र भूमि जिस पर दोनों में किसी का कब्जा नहीं केवल कुछ ही गज लम्बी है और वस्तुत अवरोध स्वतन्त्र देशो की सीमाओं का अवरोध लगता ही नहीं। दोनो ओर की हथियारबन्द फौजें कहीं पास ही थीं, यद्यपि न कहीं कोई परेड हो रही थी और न कहीं इक्के-दुक्के सैनिकों के सिवा कोई फौजी दस्ता दिखाई पडा। लगा, न तो चीन को लडाई पसन्द है और न हांग कांग के ब्रिटिश अधिकारी उसमे इस समय उलझना चाहते हैं। दोनों इस कारण अपनी सेनाएँ दृष्टिपथ से दूर रखते हैं।

लिए थे जो उसके सामने एक पर एक रखे थे। हमारा असबाब भी पास धरा था और हम अपने बक्सों की चाबियाँ लिए अफसर के इशारे पर उन्हें खोलने को तैयार खड़े थे। परन्तु अंग्रेज अफसर, जो गंभीर और प्राय रूखा लग रहा था, बड़ा सज्जन निकला। उसने पासपोर्टों में जरूरी खानापूरी करके हमें उस पार निकल जाने की इजाजत दे दी। हमारे असबाब को हाथ तक न लगाया।

चीनी अवरोध पहले ही हमारे लिए हटाया जा चुका था, पर कुछ लोग वहाँ खड़े हमारी ओर बड़ी नर्मी से मुस्करा रहे थे। कोई खास स्वागत न हुआ, यद्यपि स्टेशन पर हमारे लिए मुह-हाथ धोने और आराम करने का इन्तजाम था।

स्टेशन की इमारत करीब फर्लांग भर पर थी। रेल की पटरियों के सहारे ही हम उस ओर चले। राह में कुछ मजूर मिले जो मस्ती से चले जा रहे थे। हमें देख उनके चेहरे पर मुस्कान बरस पड़ी। चीनी चेहरा चौड़ा होता है, उस पर मुस्कान जैसे जमकर बैठती है, वस्तुत चेहरे से भी चौड़ी। अभेद्य से अभेद्य व्यक्ति के लिए भी उस मुस्कान की उपेक्षा कर जाना असम्भव है, लौटकर मुस्कराना ही पड़ता है। और यदि आपने मुस्करा दिया तो चीनी हलके से सिर हिलाकर आपका अभिवादन निश्चय करेगा। दो दिलों के बीच सहसा एक राह कट गई जिससे होकर मानव-मृदुता का दूध बह चला। मुझे पश्चिम की याद आई, यूरोप की, वहाँ भी लोग साधारणत दूसरों को देखकर मुस्कराते हैं, परन्तु केवल परिचितों के प्रति, अपरिचितों के प्रति प्राय कभी नहीं जब तक कि अनजाने हृदय असाधारण कोमल न हो।

तरह चमक रही थी। उसकी जमीन में श्वेताभ लहरें-सी बिछी थीं। एक कोने में मेज पर अनेक सचित्र पत्र-पत्रिकाएँ सजी थीं। जिनमें 'सोवियत यूनियन' और 'पीपुल्स चायना' भी थ।

गुसलखाना नया था [illegible] था जिसकी दीवारों में मुँह धोने की बेसिनें लगी थीं। टंगे तौलिया से बराबर भाप निकल रही थी जिसकी सुगन्ध कीटाणुनाशक द्रव्यों की कडी गन्ध को दबा देती थी। मेज पर चाय रख दी गई थी, चीनी चाय, गन्ध भरी, स्वादु। बाहर धूप तेज थी, भीतर भी गर्मी खासी थी। दोपहर हो चुकी थी और जब हमें सुन्दर [illegible] दी गईं तो गर्मी से बडी राहत मिली। अभी स्टेशन में बिजली नहीं आई थी, यद्यपि उसके तार चारो ओर दौडाए जा चुके थे और 'कनेक्शन' किसी दिन मिल सकता था हागकाग, लोवू, कौलून, और उनके आसपास के देहात कलकत्ता के ही रेखान्तर में है और उनका तापक्रम भी प्राय कलकत्ता जैसा ही है। गर्मी है पर दम घोटने वाली गर्मी नहीं।

स्टेशन की इमारत अभी पूरी बनी नहीं, अभी बन ही रही है, चारों ओर मजदूर काम कर रहे हैं। मजदूर लडके और लडकिया एक-से लिवास पहिने। लिवास मोटे नीले कपडे का कोट और पतलून, कोट गले तक बटनवाला और पतलून बगैर क्रीज की उटुगी पैरो से काफी ऊँची टँगी। साधारण मजूरों से वे कुछ ऊँचे तपके के लगे, कुशल मजूर, पढे लिखे और बडा मजा आया जब गोपालन साहब एक लडकी को कमकरो की भीड से खींच लाए। और लगे उससे तावडतोड प्रश्न करने। जो हमें चाय पिला रही थीं उनमें से एक अंग्रेजी जानती थी। उसने दुभाषिये का काम किया।

गोपालन कुशल 'पार्लमेन्टेरियन' है, उन्होने मुस्कराती तरुणी से प्रश्न पर प्रश्न पूछने शुरू किए—"तुम्हारा पेशा क्या है ? विशेष रुचि किस बात में है ? कितना तनखाह पाती हो ? क्या खर्च करती हो ? कुछ बचा भी लेती हो ? विवाह हो चुका है ? बच्चे ? माता-पिता ?"

लड़की तुरन्त प्रश्न होते ही उनका उत्तर देती गई। उसे कहीं झाँकना समझना न पड़ा। शब्दों में उसने पेंच न डाला, भावों को रंगा नहीं। सादे, बिना किसी बनावट के उत्तर जो सीधे हृदय से निकले थे, सच्चे और विश्वसनीय। उसके एक परिवार था। परिवार के अनेक जन काम करते थे और वह वेतन का एक अंग बचा लेती थी। उसकी रुचि साथ के अपढ़ मजदूरों को अखबार सुनाने में थी। यह काम वह बगैर किसी लाभ की इच्छा के करती थी, अपनी खुशी से। उसे अर्थशास्त्र के अध्ययन में भी रुचि थी और उसके लिए अक्सर वह रात्रि के स्कूल में जाया करती थी।

तीन प्रश्न, विशेषकर उनके उत्तर मुझे बहुत रुचे।

"वह कौन है ?" गोपालन ने सामने दीवार पर टंगे चित्र की ओर संकेत करते हुए पूछा।

"महान् जननायक, शांति का महत्तर प्रेमी।" लड़की ने उत्तर दिया। उसका चेहरा खिल उठा था। उसने चित्रगत जोजेफ स्तालिन का नाम न लिया।

"मान लो, रूस चीन पर आक्रमण कर दे ?"

"क्या ? कभी नहीं !"

"मान लो।"

"असम्भव को नहीं माना जा सकता। रूस हमारे देश पर हमला हर-गिज न करेगा। वह (पुरपलाचक) किसी मुल्क पर हमला न करेगा, वह शांति का प्रेमी है।" उसने स्तालिन के चित्र की ओर इशारा किया। "नहीं, हर्गिज नहीं !" और उसने जोर से हवा में अपने हाथ से नकारात्मक चेष्टा की।

"मान लो, ब्याग चीन पर हमला करता है ? यह तो असम्भव नहीं है।"

"लेकिन तब तुम करोगी क्या ?"

"क्यों, लड़ेंगे और उसे धूल चटा देंगे !" लड़की की सुन्दर चेष्टा कुछ पक्की हो गई, पावेगो से तनिक लाल। जनानी ललाई नहीं, एक-दूसरे तरह की लाल चमक।

"तुम जानती हो कि उसके पीछे सयुक्त राज्य अमेरिका है, वस्तुत स्वय सयुक्त-राष्ट्र सघ है।" मैंने पूछा।

"हाँ, जानती हूँ। पर हम परवाह नहीं, क्योंकि अगर ऐसा हुआ भी तो हमें मालूम है कि स्वदेश के लिए कैसे मरा जाना है। कोई हमें हरा नहीं सकता क्योंकि हम किसी मुल्क पर हमला नहीं करते और हम अपने मुल्क की रक्षा करना जानते हैं। पिछले बारह साल से हम उसके लिए लड़ते रहे हैं। आजादी का प्यार करने वाले कभी आक्रान्ताओं से हार नहीं सकते। रही सयुक्त-राष्ट्र सघ की बात। हमें मालूम है कि अमरीकी सयुक्त राज्यों के कुछ पिट्ठू हैं, पर दुनिया के राष्ट्र ! ना, वे तो निश्चय हमारे पक्ष में होंगे क्योंकि ससार भर के ईमानदार लोग आजादी और अमन को प्यार करते हैं।" शब्दों की अटूट धारा ने मेरे प्रश्नों का उत्तर दिया।

मैं चुप हो रहा। मैं जानता था कि बारह वर्ष की लड़ाई ने चीन को नोचा-खसोटा है और चीन ने उफ नहीं की है, न एक इंच जमीन खोई है। उल्टे अपनी आजादी के दुश्मनों को कुचल दिया है।

"भारत का प्रधान मन्त्री कौन है ?" गोपालन ने पूछा।

"मिस्टर जवाहरलाल नेहरू," नौजवान लड़की ने उत्तर दिया।

"उनके विषय में क्या जानती हो ?"

"वह शांति का महान् प्रेमी है क्योंकि उसने एक पत्र स्तालिन को लिखा था और दूसरा एचेसन को कि वे कोरिया का युद्ध बन्द करने में सहायता करें और इस प्रकार जगत में शांति स्थापित करने में सहायक हों।"

हमें मालूम था कि वह जो कहती है सच है। स्तालिन ने पण्डित

नेहरू के पत्र का स्वागत किया था, एचेसन ने उसका अपमान। लड़की भी इसे जानती थी और उसके उत्तर ने हमें स्तम्भित कर दिया।

"क्या तुम्हें मिस्टर नेहरू के बारे में कुछ और भी मालूम है?" गोपालन ने अपना आखरी सवाल पूछा।

"शायद, हाँ। अभी हाल में उन्होंने पांच शक्तियों में शांति सम्बन्धी सन्धि का प्रस्ताव किया है।" कहना न होगा कि इस उत्तर ने हममें से अनेक को विकल कर दिया, क्योंकि १६ व्यक्तियों के हमारे दल में अनेक ऐसे थे जिन्हें इस बात का पता न था!

नए चीन से हमारा यह पहला परिचय था। यह चीन इतिहास के चीन से, मूढ़, अफीमची चीन से, सर्वथा भिन्न था। यह एक जरा-सी छोकरी थी, (मुझे माफ करे वह लड़की, आप भी मुझे माफ करें!) जो बात कर रही थी। बरबस हमें अपने देश की याद आ गई। जो कुछ देखा और सुना था, वह अपने देश के स्मृति पर छा गया। सोचने-विचारने को काफी मसाला मिल गया। हम चुप हो रहे। कैसी जानकारी है। आक्रान्ताओं के प्रति कितनी तीव्र और क्रूर प्रतिक्रिया है! शांति के लिए कितनी गहरी अन्त प्रेरणा है! निस्सन्देह हम एक नए क्षितिज के सामने थे।

थी। लड़कियो में एक विशेष उल्लेखनीय थी। वह आक्सफोर्ड की ग्रेजुएट थी और सुन्दर अँग्रेजी बोलती थी लहजा उसका सर्वथा 'आक्सन' था, उच्चारण नितान्त निर्दोष। वह पेकिंग से आई थी और हमारे नेता की सुविधा के लिए विशेषतया भेजी गई थी। उससे हमें बडी मदद मिली जैसी औरो से भी मिली और वह तो हमारे साथ पेकिंग पहुँचने तक रही।

लडके तो आतिथ्य का भार पूरी तरह निभाने हो थे, लडकिया भी अद्भुत थीं। उनको जिस बात ने हमें विशेषत आकृष्ट किया वह था उनका स्वास्थ्य, टटके फूल-सा खिला हुआ, और उनका सहज अकृत्रिम स्वभाव। गजब की शिष्टता थी उनमें। पश्चिम में इतना घूम चुका हूँ पर इस प्रकार का सेवाभाव कहीं नहीं देखा। कद की कुछ ठिगनी, जिस्म भरा, कुछ गठा-फूला था, चीनी रग में कसे अवयव, मधुर पराजित कर देने वाली मुस्कान, आशावादी तारुण्य की शक्ति जो रूज और पाउडर की मिलावट से किसी अश में दूषित नहीं हुई, यान्त्रिक शिष्टाचार और प्रदर्शन की बनावट से सर्वथा रहित, वसन्त के प्रभाव जैसा ताजा, वह नया चीनी नारीत्व!

लडकियों के बाल कानों तक छटे हुए थे, सभी के, काम करने वाली लडकियो के भी। कुछ ने स्लैक पहिन रखे थे, यद्यपि केवल कुछ ने और अधिकतर वही नीला सूट। कुछ शान्ति-समितियो और नारी-सस्थाओ में काम करती थीं और कुछ ने, जिन्होंने विश्वविद्यालय में भाषा का कोर्स ले रखा था, विदेशी मित्रो की दोभाषिये के रूप में सेवा करना निश्चित कर लिया था, अथवा किसी ऐसे रूप में जिसमें जो उनके देश के लिए उपादेय हो और जिसके लिए वे उपयुक्त हो।

दोपहर का भोजन ट्रेन में हुआ। डाइनिंग कार (खाने का कमरा) नितान्त स्वच्छ था, उसके भीतर की हरएक चीज फर्श से छत तक चमक रही थी, और 'मेनू' (आहार की तालिका) बेइन्तहा थी। आप जानते हैं आहार के सम्बन्ध में मेरी बडी सीमाएँ हैं, वस्तुत वे सीमाएँ

हमारे सारे परिवार की हैं क्योंकि हम लोग न मांस खाते हैं, न मछली, न अंडा। चीनी आतिथ्य की इतनी प्रशंसा सुन लेने के बाद मैं बाहुल्य के बीच भी भूखो रह जाने को तैयार आया था क्योंकि जानता था कि दस्तरखान की सारी लजीज चीजें, चीनी पाकशास्त्र की हर किस्म किसी न किसी रूप में मांस की बनी होती है। पर वास्तव में चीनी बड़े व्यवहारकुशल होते हैं उन्होंने अटकल लगा लिया था कि मेरे किस्म के आधुनिक भोजन से अनभिज्ञ कुछ लोग भी शायद आएँ और निरामिष भोजन की मांग करें, और वे उस स्थिति के लिए तैयार थे। मुझे भूखो नही रहना पड़ा और सामने मेज पर रखी उन सब्जियो, तरकारियों, गुच्छियो, सलाद, फल और मिठाइयो पर टूटा जो चीनी मेरे-से मेहमानो के लिए काफी मात्रा में प्रस्तुत रखते हैं।

निरामिष भोजन वाली मेज अकेली थी, और मेजो से लगी पर एक ओर, डाक्टर किचलू के मेज के पास ही। और अपनी मेज की नायाब व्यजनो का भोगने वाला कुछ मैं अकेला ही था भी नहीं। बम्बई की श्रीमती मेहता मेरे सामने बैठी थी और हमने उन सारी चीजों का स्वाद चखा जो हमारे उदार मेजबानो ने प्रस्तुत की थीं।

दो बजे के करीब गाडी तोकू से चली। कौलून १०० मील दूर था। चार घण्टे बाद हम वहाँ लगभग छ बजे पहुँचने वाले थे। ट्रेन यूरोप की गाडियो की तरह थी। उसकी एक ओर बरामदा था जिसमें सोने वाले कमरे खुलते थे। डाक्टर अलीम, श्री गटुपल्ली और मैं—हम तीनो एक में जा बैठे। देर तक अपने दुभाषिये से नए चीन के जीवन पर बात करते रहे। देहात बड़ा समृद्ध और हराभरा लगता था। जमीन का कोई टुकड़ा बोए जोते न छूटा था और मजबूत डंठलो पर अन्न की बाले झूम रही थी। ये नए चीन की खास बात है, वस्तुत एक बडी खास बात कि उसने कही जमीन ऊसर नहीं छोडी। न तो पहाड़ो की ऊँचाइया और न नदियो के दलदल चीनी किसान को डरा सके। धरतीमाता से अपने श्रम का मूल्य ले लेते ही रहे।

थी। लडकियों में एक विशेष उल्लेखनीय थी। वह आक्सफोर्ड की ग्रेजुएट थी और सुन्दर अंग्रेजी बोलती थी लहजा उसका सर्वथा 'आक्सन' था, उच्चारण नितान्त निर्दोष। वह पेकिंग से आई थी और हमारे नेता की सेवा के लिए विशेषतया भेजी गई थी। उससे हमें बडी मदद मिली वैसे औरों से भी मिली और वह तो हमारे साथ पेकिंग पहुँचने तक रही।

लडके तो आतिथ्य का भार पूरी तरह निभाने ही थे, लडकिया भी असाधारण थी। उनकी जिस बात ने हमें विशेषत आकृष्ट किया वह था उनका स्वास्थ्य, टटके फूल-सा खिला हुआ, और उनका सहज अकृत्रिम स्वभाव। पूरब की शिष्टता थी उनमें। पश्चिम में इतना घूम चुका हूँ पर इस प्रकार का सेवाभाव कहीं नहीं देखा। कद की कुछ ठिगनी, जिस्म भरा, कुछ गठा-फूला था, चीनी रग में कसे अवयव, मधुर पराजित कर देने वाली मुस्कान, आशावादी तारुण्य की शक्ति जो रूज और पाउडर की मिलावट से किसी अश में दूषित नहीं हुई, यान्त्रिक शिष्टाचार और प्रदर्शन की बनावट से सर्वथा रहित, वसन्त के प्रभाव जैसा ताजा, वह नया चीनी नारीत्व!

लडकियो के बाल कानो तक छटे हुए थे, सभी के, काम करने वाली लडकियो के भी। कुछ ने स्लैक पहिन रखे थे, यद्यपि केवल कुछ ने और अधिकतर वही नीला सूट। कुछ शान्ति-समितियो और नारी-सस्थाओं में काम करती थीं और कुछ ने, जिन्होंने विश्वविद्यालय में भाषा का कोर्स ले रखा था, विदेशी मित्रों की दोभाषिये के रूप में सेवा करना निश्चित कर लिया था, अथवा किसी ऐसे रूप में जिसमें जो उनके देश के लिए उपादेय हो और जिसके लिए वे उपयुक्त हो।

दोपहर का भोजन ट्रेन में हुआ। डाइनिग कार (खाने का कमरा) नितान्त स्वच्छ था, उसके भीतर की हरएक चीज फर्श से छत तक चमक रही थी, और 'मेनू' (आहार की तालिका) बेइन्तहा थी। आप जानते हैं आहार के सम्बन्ध में मेरी बडी सीमाएँ हैं, वस्तुत वे सीमाएँ

हमारे सारे परिवार की है क्योकि हम लोग न मास खाते है, न मछली, न अडा। चीनी आतिथ्य की इतनी प्रशसा सुन लेने के बाद मैं बाहुल्य के बीच भी भूखो रह जाने को तैयार आया था क्योकि जानता था कि दस्तरखान की सारी लजीज चीजें, चीनी पाकशास्त्र की हर किस्म किसी न किसी रूप में मांस की बनी होती है। पर वास्तव में चीनी बडे व्यवहारकुशल होते है उन्होंने अटकल लगा लिया था कि मेरे किस्म के आधुनिक भोजन से अनभिज्ञ कुछ लोग भी शायद आएँ और निरामिष भोजन की माँग करें, और वे उस स्थिति के लिए तैयार थे। मुझे भूखों नहीं रहना पडा और सामने मेज पर रखी उन सब्जियो, तरकारियो, गुच्छियो, सलाद, फल और मिठाइयो पर टूटा जो चीनी मेरे-से मेहमानो के लिए काफी मात्रा में प्रस्तुत रखते है।

निरामिष भोजन वाली मेज अकेली थी, और मेजो से लगी पर एक ओर, डाक्टर किजलू के मेज के पास ही। और अपनी मेज की नायाब व्यजनो का भोगने वाला कुछ मै अकेला ही था भी नहीं। बम्बई की श्रीमती मेहता मेरे सामने बैठी थीं और हमने उन सारी चीजो का स्वाद चखा जो हमारे उदार मेजवानो ने प्रस्तुत की थीं।

दो बजे के करीब गाडी तोवू से चली। कौलून १०० मील दूर था। चार घण्टे बाद हम वहाँ लगभग छ बजे पहुँचने वाले थे। ट्रेन यूरोप की गाडियो की तरह थी। उसकी एक ओर बरामदा था जिसमें सोने वाले कमरे खुलते थे। डाक्टर अलीम, श्री गटुपल्ली और मैं—हम तीनो एक में जा बैठे। देर तक अपने दुभाषिये से नए चीन के जीवन पर बात करते रहे। देहात बडा समृद्ध और हराभरा लगता था। जमीन का कोई टुकडा बगैर जोते न छूटा था और मजबूत डठलो पर अन्न की बाले झूम रही थी। ये नए चीन की खास बात है, वस्तुत एक बडी खास बात कि उसने कहीं जमीन ऊसर नहीं छोडी। न तो पहाडो की ऊँचाइया और न नदियो के दलदल चीनी किसान को डरा सके। धरतीमाता ने अपने श्रम का मूल्य दे लेकर ही रहे।

कण्डक्टर ने आकर हमारे बिस्तर लगा दिए। और हम सब जाकर [illegible] बिस्तरों पर सो रहे, उन 'बर्थों' पर जो ऊपर की ओर बना हुए थे। नींद की हमें विशेष आवश्यकता थी—क्योंकि हमने [illegible] पर जो करतब दिखाए थे उनके फलस्वरूप हमारी पलकें भारी हो जाती थीं।

कोरस की आवाज से सहसा नींद खुली। लडके लडकियां चीनी-राष्ट्रीय गान गा रहे थे। कहीं किसी दल ने टेक छेड दी थी जिसे दूसरे दलों ने जोरों से पकड लिया था और गान तरंगित हो चला था। स्वर ऊंचा, और ऊंचा दैत्य की भांति भागती हुई ट्रेन से भी ऊंचा होता गया दूर की क्षितिज की ओर। गान जब बन्द हुआ एक दूसरा कोरस उठा, पर मधुर और कोमल जिसने हमारे मर्म को छू लिया और फिर वह अन्तर्राष्ट्रीय गान जिसका राग ऊंचा उठकर भीतर और बाहर के वातावरण पर छा गया।

हम प्रतिपल कान्तोन के निकट पहुंचते जा रहे थे। ट्रेन धीरे-धीरे मन्थर गति हो चली और धीरे ही धीरे बिल्कुल खडी हो गई। लडके-लडकियों की कतारें आठ बरस की आयु से १४ वर्ष तक की, सामने खडी थीं। उनके हाथ में गुलदस्ते थे और वे हमारी राह देख रहे थे। गाडी के प्लेटफार्म पर पहुंचते ही ताली बजने लगी। हम नीचे उतरे। एक के उतरते ही एक लडका या लडकी जैसी जिसकी बारी होती, बढ आता, हाथ मिलाता, गुलदस्ता हमारे हाथ में देता और मुस्कराकर हाथ पकड लेता। इस प्रकार वह हमारा पूरा चार्ज ले लेता क्योंकि वह हाथ तभी छोडता जब स्टेशन से बाहर की कार में बैठ जाते।

बाहर का शोर कानों को बहराकर रहा था। फाटक के दोनों ओर लोग कसे खडे थे। राष्ट्रीयगान गाया जा रहा था, प्लेटफार्म पर भी, बाहर भी। लोग हमारे स्वागत में खडे थे। चीन में यह हमारा पहला स्वागत था जिसका सिलसिला तब तक न टूटा जब तक हम उस देश से बाहर न निकल गए। फिर ताली बजनी शुरू हुई। यहां ताली

बजाकर ही लोग अतिथि का स्वागत करते हैं, ताली दोनों बजाते हैं, मेजबान भी, मेहमान भी।

यहाँ मैं एक घटना का उल्लेख किए बिना नहीं रह सकता। घटना ऐसी थी जो दुनिया के किसी मुल्क में सराही जाती, जिसने गम्भीर से गम्भीर व्यक्ति को भी 'शाबाश!' कहने पर मजबूर कर दिया। दो कतारों में हम चले जा रहे थे। हमारे एक हाथ में गुलदस्ता था दूसरे में छोटे बच्चे का हाथ। स्वागत की ध्वनि सहसा और गम्भीर हो उठी और हम सभी आगे देखने के लिए पंजों पर उचकने लगे, गर्दनों को सारस की भांति घुमाने लगे। हममें से एक सज्जन विशेष अधीर हो उठे और जो कुछ आगे में हो रहा था, उसे देखने के लिए कतार छोड़कर बच्चे को घसीटते कुछ कदम एक ओर बढ़े। आठ साल के बच्चे ने उन्हें सहसा रोककर पीछे घसीटा, कुछ नकारात्मक ध्वनि निकाली और अपने मेहमान को खींचकर लकीर में ला खड़ा किया। यह नए चीन से हमारा दूसरा परिचय था। चीन, जो विशाल वृक्ष की भांति अपने इस कोमल अंकुर में पनप चला था, जिसकी इस शिशु की विनम्र दृढ़ता में अपराजित महामानव बढ़ चला था।

बाबूजी, इस पत्र से आपको हमारी हांगकांग और कान्तोन के बीच की यात्रा का कुछ हाल मिल जायगा। मा को नमस्कार कहें और बच्चों को प्यार।

प्रणाम।

श्री रघुनन्दन उपाध्याय,
४—ए, थार्नहिल रोड
प्रयाग।

आज्ञाकारी
भगवत

कान्तोन
२६-६-१६५२.

प्रिय सुमन,

कुछ ही घण्टो में, यदि मौसम दुरुस्त रहा, हम पीकिंग के लिए हवाई जहाज से रवाना हो जायेंगे। जहाज कल शाम को ही हमें लेने पहुँच गया। अगर राजधानी या रास्ते में मौसम उतना ही खराब रहा जितना इस समय यहाँ है, या और भी खराब हो गया, तो हमें जहाज छोड़कर रेल से ही यात्रा करनी होगी। चूँकि शान्ति-सम्मेलन छब्बीस को ही आरम्भ हो रहा है, समय बड़े महत्व का हो गया है। और यदि हमें ट्रेन से जाना पड़ा तो आज ही चल देना होगा क्योंकि ट्रेन पीकिंग तीन दिन में पहुँचती है। मौसम के रिपोर्ट का इसी कारण हर मिनट इन्तजार है।

पिछली सध्या मैं बड़ा व्यस्त रहा, हम सभी, क्योंकि कम से कम वक्त का इस्तेमाल हमने बड़े से बड़े पैमाने पर किया। लोगो से हाथ मिला और यथोचित सम्भाषण कर हाथ-मुँह धो साध्य भोज के लिए तैयार होने हम होटल की बैठक से बाहर निकले। यात्रा इतनी सुखद रही थी कि वस्तुतः मुझे आराम की बिल्कुल ही जरूरत न थी। आराम किया भी नहीं मैंने। झट मुँह-हाथ धो उस गिरोह में शामिल हो गया जो बाहर जा रहा था। पास का छोटा पुल पार कर हम सड़क पर आ निकले।

भाबूजी, इस पत्र से आपको हमारी हांगकांग और कान्तोन के बीच की यात्रा का कुछ हाल मिल जायगा। मा को नमस्कार कहें और बच्चों को प्यार।

प्रणाम।

श्री रघुनन्दन उपाध्याय,　　　　　　　　　　आज्ञाकारी
४—ए, थार्नहिल रोड　　　　　　　　　　　　भगवत
प्रयाग।

कान्तोन
२९-९-१९५२

प्रिय सुमन,

कुछ ही घण्टों में, यदि मौसम दुरुस्त रहा, हम पीकिंग के लिए हवाई जहाज से रवाना हो जायेंगे। जहाज कल शाम को ही हमें लेने पहुँच गया। अगर राजधानी या रास्ते में मौसम उतना ही खराब रहा जितना इस समय यहाँ है, या और भी खराब हो गया, तो हमें जहाज छोड़कर रेल से ही यात्रा करनी होगी। चूँकि शान्ति-सम्मेलन छब्बीस को ही आरम्भ हो रहा है, समय बड़े महत्व का हो गया है। और यदि हमें ट्रेन से जाना पड़ा तो आज ही चल देना होगा क्योंकि ट्रेन पीकिंग तीन दिन में पहुँचती है। मौसम की रिपोर्ट का इसी कारण हर मिनट इन्तजार है।

पिछली संध्या मैं बड़ा व्यस्त रहा, हम सभी, क्योंकि कम से कम वक्त का इस्तेमाल हमने बड़े से बड़े पैमाने पर किया। लोगों से हाथ मिला और यथोचित सम्भाषण कर हाथ-मुँह धो सान्ध्य भोज के लिए तैयार होने हम होटल की बैठक से बाहर निकले। यात्रा इतनी सुखद रही थी कि वस्तुतः मुझे आराम की बिल्कुल ही जरूरत न थी। आराम किया भी नहीं मैंने। झट मुँह-हाथ धो उस गिरोह में शामिल हो गया जो बाहर जा रहा था। पास का छोटा पुल पार कर हम सड़क पर आ निकले।

थे, वैसे ही छोटे-छोटे इश्तहार अपने चेहरे पर तारे और अम्न की फाख्ता चमकाते खिड़कियों में सजायी चीजों पर अपनी लाल आभा डाल रहे थे। राजमार्ग पर भी, रोजगार तेजी से चल रहा था, लोग उसी तेजी से खरीद भी रहे थे गलियों में भी। कहीं मोलभाव नहीं, कीमत के निस्बत कोई तर्क वितर्क नहीं, कोई झमेला नहीं, क्योंकि कीमतें चीजों के ऊपर लिखी-सही थीं। किसी प्रकार के आन्तरिक आर्थिक विरोधों का उद्गम को भेंट देना सम्भव न था, उसका जरा भी किसी को अन्देशा न था। भीड़ धक्के देती, धक्के खाती, खरीददारी में व्यस्त थी, अपनी-अपनी खरीददारी में, मगर कहीं इखलाक की कमी न थी, कहीं जरा झुंझलाहट न थी। शांत, गम्भीर समझदार लोग, अपनी मुस्कराहट से दिल में जगह कर लेने वाले लोग, विश्वास और सुख उपजाने वाले ये चीनी।

नगर और आस-पास के गांवों से आए मर्द-औरत। नाटे कद के किसानों की शक्लें अधिकतर दिखाई पड़ रही थीं। औरतें बगैर किसी झेंप या हिचक के आ-जा रही थीं, औरतें-कर्मठ शक्ति-राशि, लड़कियां जिनके साफ चेहरे। पर प्रकाश जैसे आंख-मिचौनी खेल रहा था और जिन पर आशा और प्रसन्नता गहरी बैठती थी। चेहरे वास्तव में इतने साफ कि लगता था एक-आध परत त्वचा की हटाली गई हो जिससे मानवता का आन्तरिक राग सहसा चमक उठा हो।

यह नई नस्ल है सुमन, जो पुराने से ही उठी है। नस्ल जो मानव को उसका औचित्य देगी, दानव को उसका न्याय दण्ड, और फौलाद को लजा देने वाले अपने जिस्म से उचित पुराने की रक्षा करेगी, उचित नए का निर्माण।

कान्तोन दक्खिनी चीन का सबसे बड़ा नगर है, क्वांतुंग प्रान्त की राजधानी, जहां १५ लाख नागरिक रहते हैं। नगर साफ चमक रहा है वैसे ही जैसे (लोगों का कहना है) नए चीन के दूसरे नगर। कहीं एक मक्खी नहीं दिखाई पड़ती, न बाजार में, न भोजनालयों में, न धन की

दूकानों में। लोगों का कहना है, वास्तव में मछली और मास की दूकानों में भी नहीं। एक भोजनालय के पास से निकले, उसकी वाहरी और भीतरी दीवारो पर, दूकानदारों और लोगो को कीटाणुओं और मक्खियों से आगाह करने वाले इश्तहार चिपके हुए थे।

एक और उल्लेखनीय वात देखी—भिखमगे न थे, जो हांग-कांग में दुर्दशा कर डालते हैं। आज की चीनी परिस्थिति में उनका अस्तित्व ही नहीं हो सकता। उनको देश की विभिन्न निर्माण-योजनाओं के मोर्चे पर भेज दिया गया है। चीन में बेकारी तो खैर है ही नहीं, उसे और आदमियों की जरूरत है, कर्मठ हाथो की। इससे स्वाभाविक है कि चीनी सरकार तन्दुरुस्त जिस्मो को ऊंघते फिरते, दान की कृपा पर जिन्दा रहते गवारा नहीं कर सकती। उस प्रकार का दान आज के चीन में अत्यन्त गर्हित और अपमानजनक समझा जाता है। भिखारियों को काम दे दिए गए हैं। वे आज कारखानो में कारगर साबित हो रहे हैं, मजदूर हैं, किसान और सैनिक हैं।

इसी प्रकार चीन ने वेश्याओं का भी अन्त कर दिया है और कान्तोन की हजारों पहले की वेश्याएँ आज इज्जतदार नागरिकों की हैसियत से दफ्तरों, हस्पतालों, वालावासो, स्कूलों, साक्षरता के मोर्चों, ट्रेनों और बसों में काम कर रही हैं। अनेक सम्मान्य पत्नियां वन गई हैं और समाज ने उनके नए पतियो को उन्हें स्वीकार करने के कारण अपमान-स्वप न माना। इस प्रकार वह पाप का रोजगार, जा अति प्राचीन काल से चला आता था, आज चीन की धरा से मिट चुका है। और यह सारा केवल दो-तीन वर्षों की क्रियाशीलता का परिणाम है। हमें साफ लगा कि वस्तुत आवश्यकता संकल्प की दृढता की है और सरकारों की अक्षमता वस्तुत भुलावा मात्र हैं, उनकी अयोग्यता का उदाहरण मात्र।

भीड़ की खरीददारी देख हमें माल के अटूट आयात का एहसास हुए बिना न रहा। दूकानो में असमाप्य मात्रा में माल गंजा हुआ है, उस

काले झूठ पर व्यंग्य करता जो दुश्मनों के प्रोपेगैण्डा की रीढ़ है, यानी कि उनकी कभी कमी हो जायगी। उनकी कभी कमी नहीं हो सकती क्योंकि उनमें कमी कर अपने एकान्त व्यवसाय को लाभ पहुँचाने वाले हाथ आज चीन में है ही नहीं। खाद्य पदार्थ दूकानों में ठने है, विभिन्न अन्न अमित मात्राओं में। उसी प्रकार पहनने के कपडे भी अनन्त मात्रा में उन दूकानो में है—मोटे-नीले कपडे से लेकर महीन से महीन कलाबत्तू तक, गरीब के वस्त्र से लेकर ऋद्ध बेजनी, सुनहरी पोशाकों तक। हाँ, आम जनता की रोजमर्रा की चीजों और श्रीमानों द्वारा व्यवहृत वस्तुओं की कीमत में निश्चय बडा अन्तर है। अमरीकी माल भी उपलब्ध है, और प्रचुर मात्रा में, पर उसके मूल्य से सामान्य खरीददार हतोत्साह हो जाता है। चीन अपनी आवश्यकता की चीजें देश में बना रहा है और अपनी आर्थिक विषमता को जहाँ वह दिन-रात के परिश्रम से दूर कर रहा है, वहाँ अपने बजट को सन्तुलित करने में लगा है और मूल्य की स्थिरता को दृढ, निस्सन्देह वह केवल कुछ लोगो के रुचि-वैचित्र्य अथवा चित्त-परिष्कार मात्र के लिए देश से वह अपने कठिन अर्जित धन का धारासार प्रवाह सहन नहीं कर सकता।

सांध्य भोज के लिए देर हो जाने के डर से हम अतिथि-भवन की ओर लौटे। जिज्ञासा भरी आंखें हमारे ऊपर बिछ गईं, पर आंखें ऐसी जिनमें सहानुभूति उमडी पडती थी, कठोरता का लेश न था। भाषा के अभाव में केवल चेष्टाओं द्वारा मुस्करा और सिर झुकाकर हमने अपने भाव अभिव्यक्त किए और उन्हीं द्वारा उनके भावों को भी समझा। मानव सहानुभूति सारी भाषाओं में महान् है, सारी जबानो से अधिक अभिव्यञ्जक। इससे जिस धारा का विकास होता है वह मानवी सीमाओं को पार कर चराचर को अपनी तरलता से निहाल कर देती है। अनजाने नगर में चमकती सडकों पर घूमते हुए हमें क्षण भर भी अपनी वैदेशिकता का बोध न हुआ। सड़कें अनजानी न लगीं, चेहरे पहिचाने-से लगे।

देर नहीं हुई थी। हमारे मित्र अतिथियों से बात कर रहे थे। भोजन का हाल लोगों से भरा था। हृदयग्राही स्वागत। दृढ़ हस्तमर्दन। अभिराम हास्य। प्रसन्न आलाप। धुएँ के उठते हुए भूरे आवर्त। तीन गोल बड़ी मेजें खाने के सामान से लदी हुई। अनागतों की प्रतीक्षा।

चीन में भोजन साधारण नहीं एक प्रकार का यज्ञ है—अनन्त भोजन। मेज, प्लेटों और रिकाबियों के भार से जैसे कराह उठती है। सुन्दर प्लेटें, छोटी-बड़ी बोतलें और सुराहियाँ, ऊँचे-छिछले चषक, बर्फ-से हल्के उजले रोटी के कतरे, नमक और चटनियाँ—वस्तुतः आगे आने वाले पदार्थों की सूची। और जो आगे आया उसने मुझे तालेमियों की तरुण मिस्री रानी और प्रसिद्ध क्लियोपात्रा की बड़ी बहन बेरेनिस की दावत की याद दिला दी। लिखा है कि उसकी दावतों में भोजन की सामग्री इतनी विविध होती थी, इतनी मात्रा में परसी जाती थी कि आमंत्रित अतिथियों के भोजन के बाद भी इतना बच रहता था कि उससे सौ आदमी भरपूर खिलाए जा सकें।

दावत का आरम्भ स्थानीय शान्ति-समिति के प्रधान की स्वागत-वक्तृता से हुआ। उसका उत्तर हमारे नेता ने मुनासिब तौर से दिया।

हुआ। एक के बाद एक चीजें आने लगीं, थाली पर थाली। मास की किस्में, मछली की किस्में, तरकारियों की किस्में, गुच्छियों की किस्में, कँवल की नाल और कँवल के बीज, बांस की कोपलें और नव-पल्लवों के विविध प्रकार, और अन्त में चावल, सूप और मिठाइयां, हरे, लाल और पीले फलों के पहले।

मास की किस्में स्वाभाविक ही निरामिष किस्मों से अधिक थीं। मुर्ग और भुने-तले चूजे, छौंकी-बघारी और भरी हुई मछलियां जैसे प्लेटों से अपने प्रशसकों को पुकार रही थीं। चीनी समुद्र में मछली के किस्मों की कमी नहीं और चीन के पीले मछुए अपने काम में उतने ही पटु हैं जितने उनकी कुशलता को सफल बनाने वाले मछलियों के स्वाद के प्रेमी। वे परसी हुई मछलियों को काटने, कतरने और फाडने में नितान्त सफल हैं। मेरा मतलब उन मित्रों से है जो चीनी भोजन के अभ्यस्त न होने के कारण लकडियों का इस्तेमाल न कर पाते थे और मजबूर होकर जिन्हें छुरी और कांटे की शरण लेनी पडी थी। कुछ तो लकडियों के प्रयोग में सफल भी हो गए पर मैंने जो कोशिश की तो उनके सिरे या तो दूर हट जायें या एक दूसरे पर चढ बैठें। इसका नतीजा होता—मेरी झुंझलाहट और एक के बाद एक बैठे हमारे मेजबानों की तफरीह।

सुमन, तुम्हारी बहुत याद आई, क्योंकि मैं जानता हूं तुम्हें गोश्त और मछली बहुत पसन्द है। और यद्यपि तुम भी लकडियों के इस्तेमाल में वैसे ही अनाडी साबित होते जैसा मैं हुआ, मुझे यकीन है कि हड्डियों को आदिम बर्बरता से तोड उनकी मज्जा चूसने में तुम कोई कसर न रखते। निश्चय तुम्हें हिंस्र जन्तुओं का सुख होता। सही है कि निरामिष भोजी होने के कारण जो साग-सब्जी तक ही मेरी सीमायें बंध गई हैं जिनमें मांस की स्वादु प्लेटों को छोड मुझे गो-वर्ग की चेतना में ही सन्तोष करना पडा, परन्तु अपने उन साथियों के सुख का अन्दाज लगाए बिना मैं न रह सका जो बड़ी तन्मयता से अपने ग्रासों को चूस, चुचन और

निगल रहे थे। यहां एक खास किस्म की मछली का जिक्र किये बगैर नहीं रह सकता। मछली वह बडी खूबसूरत थी, बैंजनी रंग की। ऐसी मछली एक बार ग्रीस में भी देखी थी, जो वहां वालो का कहना है, रति की देवी अफ्रोदीती के साथ ही समुद्र-फेन से जन्मी थी। काश, तुम वहा होते और वह 'सकल पदारथ' चखते जो मेरे लिये अलभ्य थे—दस्तर-खान का वह सारा जंगी सामान—मोटी टनी-फिश, गर्म डेविल-फिश, बडी प्लेटो में और छिछली रकाबियो में परसी हुई जिससे वे जलती ही खाई जा सकें। तुम शायद इसलिये अफसोस करो कि मैं इन मजेदार चीजो को बस देखता ही रह गया, उन्हे चख न सका। पर मैं तुम्हे यकीन दिलाता हूँ कि मैं अपनी अहिंसा की सीमाओ से सन्तुष्ट हूँ, यद्यपि मैं तुम्हारी या मेरे साथ खाने वालो की क्रूर तुष्टि से किसी प्रकार डाह नहीं करता। जानता हूँ, उन्होने बडे स्वाद से खाया और तुम भी, यदि वहां होते, बडे सुख से खाते। यद्यपि मैं स्वयं उस आनन्द का भागी न हो पाया फिर भी मैं उस भोजन के सुख का अन्दाज निःसीम मात्रा में उस फिलासफर की भाति ही लगा सकता हूँ जिसने कहा था कि वह सिसेरो की समीक्षा बिना प्रतिबन्ध के इसलिये कर सकता है कि उसने उसको पढा नही !

पर कुछ केले, सेव और आड़ू। पलग से लगी छोटी अलमारीनुमा मेज पर छायादार विजली का लैम्प। कमरे में एक ओर स्प्रिंगदार सोफा और उसकी कुर्सियों के वीच एक नीची मेज। उस पर सिगरेटो के दो पैकेट रखे हैं और एक दियासलाई ऐशट्रे में सोसी हुई है। साथ ही एक धातु की छोटी प्लेट में कुछ मिठाइयाँ और टाफी हैं। गुस्लखाने में लम्बा गहरा चिकना नहाने का टब है, कमोड, आईने, दांत का ब्रुश, पेस्ट, तेल भरी शीशी, ग्लिसरिन, वेसलिन और क्रीम की शीशियाँ, कंघा, नहाने और मुंह पोछने के तौलिये—हर चीज चीन की वनी।

पलग के पास मांडी लगे सूल के स्लीपर रखे थे और उनमें जब मैंने जूते से अकडे हुए पाव डाले तो वडा आराम मिला। सोने के कपडे वदल कर विस्तर में जा घुसा। वत्ती जलती ही छोड दी। विस्तर निहायत आरामदेह था और दिन की दौड-धूप से राहत के लिए सोना जरूरी था। किसी प्रकार की चिन्ता मन में न थी और विस्तर पर पडते ही सो जाना स्वाभाविक था। पर नींद लगी नहीं। रोशनी वुझा दी, वह हरी वाली भी जिसका प्रकाश नहीं के वरावर था। आंख वन्द कर सोने का आभास पैदा करने लगा, परन्तु सफल न हो सका। फिर भी चुपचाप पडा रहा, सांस की आवाज तक अपने को भी नहीं सुन पडने दी। इसका एक कारण था। अगर विस्तर पर जाते ही सो नहीं जाऊं तो एक मुसीवत उठ खडी होती है। उसी मुसीवत का डर था और वह डर सही हो गया। मेरा उन्निद्र लौट पडा। चुपचाप पडा रहा। वगैर सोए, पूरा जगा हुआ सपने देखने लगा। अन्दर से जगा या वाहर से सोया क्योंकि वाहरी जगत् का कोई वोध तव मुझे न था। कमरे में घना अन्धकार और उसमें मन के पट पर जागते-दौडते चित्र।

पुराने चीन की वात सोच रहा था। सामन्ती-साम्राजी चीन की, जव धनी का शब्द ही कानून था, जव धनी चाहे तो हवा वहा सकता था, चाहे तो पानी वरसा सकता था। उसके वरावर व्याघ्र हिंस्र न था, भेडिया धूर्त न था।

वह उस पत्नी या पत्नियों का स्वामी था जो उसके लम्बे-चौड़े हरम की अनगिनत रखैलो से भिन्न थी। फिर भी उसकी कामुकता की कोई सीमा न थी और उसके हरम के अतिरिक्त अनेक होटल थे जो उसकी घिनौनी लिप्सा को पूरी करने में उसकी मदद करते।

और जब इस प्रकार मैं पुराने चीन के होटलो की बात सोच रहा था तब मुझे एकाएक अपने पलग का भी ख्याल आया। मैं उस अंधेरे में काप उठा। कौन जाने ? पर वे जानते है। हां, सुमन, वे सचमुच जानते है। क्योंकि उस ओर किसी ने कहीं कुछ इशारा किया था। और सहसा हँसती, रोती और क्रूर तस्वीरें मेरी आंखो पर छागई। लम्बा गाउन, छोटी जाकेट, हाथ में छड़ी। पहले कादमी करते होटल में दाखिल होना और वहा के नौकरो-मातहतो की जेबें गरम कर देना। छोटी बच्चियां, जो अभी सही औरत भी न हो पाई, मां के स्तन से खींच ली जाती है या सीधी खरीद ली जाती है। घिनौने कामुक के आदमी राह में जगह-जगह खड़े है। उनके हाथो में लोगो को बांधने के लिए रस्सियां है, घाव करने के लिए छुरे है।

धीरे-धीरे वह निहायत बेशर्मी से वासना की अमर्यादित अधिकाई से अलसाए अपनी आख के डोरों की ओर इशारा करती है, रात के बेचे अपने ओठों की ओर, रुखे हाथों में दिये अपने बालो की ओर, अपने कुचले नारीत्व की ओर। उसकी तग छाती में विपुल शघाई अब तक खडा हो चुका है!

हाँ, यह होटल और कौन जाने स्वय यही पलग? निश्चय विचार घिनौने थे और उस अँधेरे में उन विचारो से लडता मै सपनो की परिधि से बाहर हो चला। परन्तु अभी उस परिवर्तन को समझ भी न पाया था कि अचानक नींद लग गई। उस ऊँचे पलँग के आरामदेह बिस्तर पर गहरी नींद सोया। जागा तडके, गो सोया देर में था। मेरे लिए चार घटो की नींद बडी न्यामत है, मुँह माँगा वरदान और तीन बज जब नींद खुली तो बेशक शिकायत की कोई वजह न थी।

सात बज चुके हैं। विश्वास नहीं होता कि साढे तीन घटे लगातार लिखता रहा हूँ। आँखें खोलीं तो कुछ अजब-सा लगा और कुछ देर चुप-चाप बिस्तर पर ही पडा रहा। सन्नाटा छाया था। लगता था जैसे उस सन्नाटे पर अँधेरे की मोटी काली परतें चढ़ा दी गई है। और तब मुझे तुम्हारी याद आई, बच्चों की और तुम्हारी भली बीबी शान्ति जी की। फिर मन इधर-उधर भटकता एक ऐसी याद पर जा टिका जिसे मेरा दावा है, तुम बूझ नहीं सकते। उस घटना का सम्बन्ध तुम्हारे स्वर्गीय दादा से है। तुम्हें याद होगा जब वह एक बार गांव से शहर आए थे और तागे में बैठकर तुम्हारे साथ ही घर पहुँचे थे। ताँगे वाले को तुमने भाड़े के छ आने दे दिये थे। तुम खुद तो घर के अन्दर आ गये थे पर दादा ताँगे पर ही बैठे रहे। कुछ देर बाद तुम्हें उनकी सुधि आई। तुमने उन्हे घर में नहीं पाया। उन्हें देखने जो तुम बाहर निकले तो देखा वे ताँगे में जैसे-के-तैसे जमे बैठे हैं। ताँगा वाला झगड रहा था और बुज़ुर्ग चुप बैठे जमाने की बेशर्मी पर लानत भेज रहे थे। तुमने उन्हें मनाया, हाथ जोडे, पर उन्होंने कुछ सुना नहीं, हिले तक नहीं। और जब तुमने

झल्ला कर उनके उस आचरण का प्रतिवाद किया तब वे बोले—"छ आने में तो मैं अपने खेत पर आदमी से सारा दिन काम कराता हूँ। मैं इस उचक्के का इस तरह धोखा देना बर्दाश्त नहीं कर सकता। यहाँ से हिलूँगा नहीं और न इस बदमाश को हिलने दूँगा। शाम तक मेरे छ आने वसूल हो जायेंगे, क्योंकि तब तक मैं यहा जमा रहूँगा और यह धूर्त बेकार रहेगा।" मैं कहता हूँ सुमन, कि तुम्हारे दादा के उस बदले के सामने हम्मुराबी की सारी व्यवस्था को काठ मार जाय! खैर, मेरी खुमारी अब तक दूर हो चुकी थी। मैंने कलम उठा ली और तुम्हें लिखने बैठ गया।

अभी लिख ही रहा था कि किसी ने आकर बताया कि जहाज नौ बजे चल पड़ेगा और हवाई अड्डे को ले जाने के लिए सारा सामान तत्काल दे देना पड़ेगा। गरज का सारा सामान अपने साथ ही जायगा। पिछली रात हमें सब सामान के यह देखने के लिए तोला गया था कि वजन कहीं हद से बाहर तो नहीं है। जाहिर है कि बोझ ज्यादा नहीं था, कम-से-कम इतना ज्यादा नहीं कि डर हो जाय। मुझे जल्दी करनी होगी। अभी गुसलखाने जाना है और फारिग हो नीचे बैठक में। जिससे बगैर किसी को इन्तजार कराए जहाज और आज की डाक दोनो समय से पा सकूँ।

तुम सब को प्यार,

डा० शिवमंगलसिंह 'सुमन',
माधव कालिज,
उज्जैन (मध्य भारत)

स्नेही
भगवत शरण

पीकिंग,

२२-६-५२

पद्मा,

मैं पीकिंग में हूँ। हम यहाँ कल शाम पाँच बजे पहुँचे।

प्रभात सुहावना था, परन्तु कान्तोन के अतिथि भवन से निकलते-निकलते वातावरण कुछ गरम हो चला था। सडकें जिनसे होकर हमारी गाडियां चुपचाप गुजरीं, शान्त थीं। कहीं किसी किस्म का शोर न था यद्यपि लोग घरों से सडको पर निकल आए थे और उनका दैनिक आचरण प्राय आरम्भ हो चुका था। नगरवर्ती देहात सुन्दर था, खुला और हरे खेतो भरा। उन्हीं ऋद्ध खेतों के बीच, पहिचाने नामहीन जंगली फूलों के बीच, फैले देहात में हमारी कारें दौड चलीं।

फैले मैदान में असीम आकाश के चदोवे तले विशाल हवाई अड्डा। इमारत सादी, भीतर आरामदेह, गद्दीदार कुर्सियो से मण्डित। मेजें चीनी, अंग्रेजी, रूसी और चेक पत्रिकाओ से भरीं। दीवारो पर टंगे हुए बडे-बडे नक्शे और मानचित्र। एक के सामने जा खडा हुआ। स्पष्ट रेखाओं में हवाई अड्डों और बडे-बडे नगरो के निशान बने थे। चीन आने-जाने के साधनो में प्राय कंगाल है। विशेष एयर लाइनें नहीं, न हवाई रास्ते हैं। शायद इधर यह अकेला हवाई रास्ता है और वह भी हांकाऊ और कान्तोन के बीच नहीं चलता। उसकी दौड केवल हांकाऊ और पीकिंग के बीच है। चीन में रेलवे भी बहुत नहीं है और जो है भी उनमें से अधिकतर वर्तमान सरकार की बनाई हैं।

ताज्जुब होता है कि आखिर विदेशी शक्तियां चीन में करती क्या रही हैं? फ्रेंच, जर्मन, अंग्रेज और अमेरिकन, जो पिछली सदी के अन्त

और वर्तमान के प्रारम्भ में चीन के इतिहास में इस क़दर हावी थे, वे करते क्या रहे ? हवाई रास्ते नहीं, रेलें नहीं, सड़कें नहीं। माम्रो की सरकार को चीन के विदेशी मित्रों और स्वदेशी देशभक्तों द्वारा यही नकारात्मक दाय मिली !

हँसी की फुलझड़ी ! देखा, डाक्टर किचलू चीनी मित्रों से घिरे हुए हैं और हँसी के फुहारे छूट रहे हैं। फिर वही बेबस कर देने वाली रोजमर्रा की मेहमानदारी—शराब, चाय, फलों का रस। जहाज की ओर बढ़े, जहां प्रसन्न मुस्कराती लड़कियां खड़ी थीं। उन्होंने हाथ मिलाए, हमें अपने गुलदस्ते भेंट किए। मित्रों से विदा लेकर और उन्हें उनकी अकृत्रिम सहृदयता के लिए धन्यवाद करते हम अपनी सीटों की ओर बढ़े। तालियां बजती रहीं और जहाज के जमीन से उठ जाने के बाद भी हमने अपनी विदा में उठे डुलाते हाथों को खिड़कियों से देखा।

प्लेन पथरीली जमीन पर, कुटी कंकरीट और घास से ढकी राह पर दौड़ चला। फिर पक्षी की नाईं अपने पंख तोलता हल्के से ऊपर उठा। तरुण, सुन्दर होस्टेस (जहाज की मेजबान लड़की) ने खुली मुस्कराहट द्वारा हमारा स्वागत किया, खाने के लिए रुई के टुकड़े दिए, चीनी टाफी बांटी और चाय-काफी के लिए पूछा, फिर पत्रिकाएं लिए हमारे पास पहुंची और यात्रा का समय काटने के लिए उन्हें लेने का इसरार किया। पूछा, किसी को हवाई बीमारी तो नहीं होती ?

मिलना-मिलाना हुआ, नारे लगे, फिर शुभकामनाओं का प्रकाशन हुआ, शुभकामनाएं जो पहाड़ों से कहीं ऊंची थीं, आकाश से कहीं व्यापक, जिन्होंने हमसे ऊपर उठकर जहाज की अशिव से रक्षा की।

मैं वह दृश्य भूल नहीं सकता, पद्मा, वह शालीन विदा-कार्य। लगा, जैसे मन की कोई शिरा वहीं रह गई है, जैसे हमारा कुछ छूटा जा रहा है, और उनका कुछ जैसे हम अपने भीतर लिए जा रहे हैं। जिन्हें हम पहले कभी नहीं मिले, जिनसे हमें आगे कभी मिलने की सम्भावना नहीं, पर लोग ऐसे गोया हम उन्हें सदा से जानते रहे हैं, ऐसे जिन्हें हम कभी भूल नहीं सकते। पद्मा, क्या कारण कि लड़कियों के दल के दल सहसा उन जनों के अभाव से रो पड़ें जिनको उन्होंने कभी न देखा, कभी न जाना? और फिर इसका क्या कारण कि आयु से प्रौढ़ और मन के पक्के मर्द सहसा जैसे टूट जायें, उन्हें अपने आंसू छिपाने पड़ें? शायद इस कारण कि उनकी जाति समान है, उनके प्राण समान हैं, उनके आवेग समान हैं, मानव और मानवीय।

यह विदा निस्सन्देह तत्वत जनानी थी, चीनी नारीत्व का आभास लिए। और चीनी नारीत्व, वह तो कुछ ऐसा है कि लगता है बाकी दुनिया से भागकर उसने चीनी नारी की भवों के नीचे शरण ली है। हम आकाश मार्ग से उड़े जा रहे थे परन्तु पृथ्वी का यह मानवीय औदार्य आकाश से और ऊंचे उठकर हमारे ऊपर छाया था। वह सपना फिर तब टूटा जब हमारा जहाज चीनी जनतन्त्र के महानगर पीकिंग पर, उसके झीलों, मैदानों पर, महलों, वितानों पर उड़ने लगा, और जब लाल पट्टे पहने बच्चों का एक दूसरा दल नीचे से हमारी ओर अपने गुलदस्ते हवा में हिलाने लगा।

नौ घण्टे में डेढ़ हजार मील उड़कर पीकिंग पहुंच जाना कुछ कम न था। अनेक बड़े लोग जहाजी अड्डे पर हमें लेने आए थे। झट हम नीचे उतरे। कैमरों की खट्-खट् हुई, गुलदस्ते भेंट मिले, भारत, बर्मा और लंका के मित्रों ने चीनी दोस्तों के बीच हमारा स्वागत किया।

उन्हीं में कुमुदिनी मेहता भी थीं। हवा सूखी वह रही थी, घनी शीतल, हलकी सर्द। फिर उस प्राचीन नगर के बीच हमारे बसों का दौड पडना जिसकी ऊँची भूरी दीवारों को अनेक बार शत्रुओं ने जीता और तोडा था, अनेक बार जिन्हें लाघने में वे असफल रहे थे। उन्हीं दीवारो में बने अनेक ऊँचे द्वारों में से यह था जिनके भीतर से हम पीकिंग होटल की ओर भागे, जहाँ दुनिया के कोने-कोने से शांति के लडाके इकट्ठे हो रहे थे।

दीवारें, दीवारें, दीवारें! पीकिंग दीवारों का नगर है। नगर के बीच से चाहे जिधर मीलो निकल जाओ पर इस विशाल परकोटे की भूरी भुजाएँ तुम्हें अपने वेष्टन में घेरे ही रहेंगी। इन दीवारों के पीछे सुरक्षा का अनायास भाव मन में उतर आता है। सभवत कभी उन्होंने इतिहास के मध्यकाल में नगर के निवासियों को उन दुश्मन रिसालो के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान की थी जो निरन्तर रक्त और लूट के नाम पर दौडते रहते थे। कुछ लोगो ने सन्देह भी किया है कि क्या सचमुच यह प्राचीरें महान् सेनाओ की गति रोक सकी होगी? जरूसलेम, दिल्ली, पीकिंग सभी ने उनके प्रति समय-समय पर आत्म-समर्पण कर दिया जिनके सामने न तो फैले-सूखे रेगिस्तान ही कोई रुकावट थे, न बर्फीले ऊँचे पहाड ही।

वेनिस का यात्री मार्कोपोलो, जिसका घर मैं दो साल पहले देख आया था, तेरहवीं सदी में चीन गया था और उसने समकालीन पीकिंग का अपने भ्रमण-वृत्तान्त में वर्णन किया—२४ मील का घेरा, प्रत्येक भुजा छै मील लम्बी, बारह ऊँचे द्वार, प्रत्येक दिशा में तीन-तीन और हर द्वार के ऊपर खुशनुमा महल, वैसे ही दोनों कोणों में एक-एक, जिससे सन्तरी सेना के हथियार वहाँ रखे जा सकें। पीकिंग की आज की दीवारें मिंग वंश के पहले दो सम्राटों की बनवाई हैं, पिता-पुत्र की, पन्द्रहवीं सदी की। मचुओं के तातार नगर की सड़कों से ५० फीट ऊँची यह दीवारें सिर उठाए खड़ी हैं, नीचे साठ फीट मोटी, सिरे पर चालीस फीट, और उनमें ६ द्वार हैं, प्रत्येक सिर से एक भव्य प्रासाद उठाए। उत्तर के नगरों का राजा यह महान् दुर्ग पीकिंग अपने चतुर्दिक घेरने वाली जल से भरी खाई में निरन्तर अपने कलश-कगूरे कभी चमकाता रहता था। आज उसकी दीवारें सूनी हैं यद्यपि उनका दर्शन अशिव नहीं लगता।

प्राचीन पीकिंग की उन बार-बार बनी दीवारों के पीछे चार-चार नगर बसे हैं—उत्तर में तातारों या मचुओं का नगर, दक्खिन में हानों का प्राचीन चीनी नगर, मचु आबादी के बीच फिर साम्राज्य का केन्द्र तीसरा नगर और चौथा इन सब का अन्तरग और इतिहास में बदनाम 'अवरुद्ध-नगर'—फारबिडन सीटी—कभी का सम्राट् और उसके दरबार का आवास। इन चारों नगरों की अपनी-अपनी हर्ष-विषाद की कहानी है। उनके परकोटों की एक-एक ईंट ने हमले देखे हैं, करुण विलाप सुने हैं। वही अब युद्ध के शत्रुओं शांति के निर्माताओं की भीष्म प्रतिज्ञा सुनेंगे।

पीकिंग होटल कई मंजिलों की ऊँची इमारत है जो पहले अमरीकी व्यवस्था में था। वर्तमान ससार की प्राय सारी सुविधाएँ वहाँ प्राप्त हैं। ससार के शान्ति प्रेमी जनता के प्रतिनिधि वहीं ठहराये गए हैं। सोवियत, मगोलिया, जापान, कोरिया, हिन्दुस्तान और इण्डोनेशिया के प्रतिनिधि वहीं हैं। डॉक्टर अलीम को और मुझे एक ही कमरा मिला, काफी बड़ा और कुशादा।

तुम्हे मेरे भोजन के सम्बन्ध में कुछ चिन्ता होगी। पर ना, चिन्ता की कोई बात है नहीं। सही है कि मै चीनी भोजन नहीं खा सकता और मेरा आहार निरामिष खाद्यो तक ही सीमित है फिर भी मुझे भूखा नहीं रहना पड़ता। फलो की भरमार है—सेव, नाशपाती, नाख, आड़ू, केले, अंगूर—वही जो, तुम जानती हो, मुझे बहुत रुचता है, बांस की कोंपल, कुकुरमुत्ता (मशरूम) और चीनी रसोई की अनेक अन्य चीजें उपलब्ध हैं। कई तरह के चावल मिल जाते हैं और उन्हे जैसा चाहे बनवा लेना महज मामूली बात है। शाकाहारियो की सख्या भी कुछ कम नहीं है और उनमें अनेक ऐसे भी हैं जो अपने घरो में मास नित्य खाते हैं। चीनी आतिथ्य गजब का उदार है। उसने हर स्थिति का अटकल लगा लिया है और असामान्य से असामान्य आवश्यकताएँ भी पूरी करने को वह उद्यत है। इस सम्बन्ध में कुछ चिन्ता न करना।

कुछ देर बाद हम बाहर निकले। कुछ तो थके होने के कारण अपने कमरों में चले गए, कुछ होटल की बैठक में जाकर खड़े-बैठे उन मित्रों से बात करने लगे जो वहीं इन्हें एकाएक मिल गए थे। बीनू, मैं, डाक्टर अलीम और कुछ दूसरे साथी टहलने के लिए होटल से बाहर चल दिये, तीएनानमेन के बड़े मैदान की ओर, जो पास ही था।

सांझ बड़ी सुहावनी थी। शीतल हवा धीरे-धीरे चल रही थी, हल्की तीखी, पर ऐसी नहीं जो बुरी लगे। पीकिंग में गर्मियां खत्म हो चुकी थीं और जाड़ा धीरे-धीरे शुरू हो रहा था। मने आते ही गरम कपड़े पहिन लिए थे, गरम कोट तो जहाज़ में ही पहने हुए था। चौड़ी सड़क प्रकाश से चमक रही थी। लोग फुट-पाथ पर चले जा रहे थे, कुछ तेज़, कुछ चहलकदमी करते। बसें, ट्राम गाड़ियां और मोटरें साधारण गति से आ-जा रही थीं। हमने भी टहलना ही पसन्द किया और पैदल निरुद्देश्य इधर-उधर की बातें करते चल पड़े। अलीम साहब बीनू को जर्मनी से ही जानते थे और बंगाल के डेलिगेट जो हमारे साथ निकले थे बड़े खुशमिज़ाज थे।

हम तिएनानमेन (स्वर्गीय शान्ति का द्वार) के सामने उस मैदान की ओर बढ़े जहां सन् ४९ से इधर अनेक महान् घटनाएं घटी हैं। वहीं सैन्य-निरीक्षण भी हुआ करता है और राष्ट्रीय दिवस का समारोह भी। यशस्वी मैदान लोगों से भरा था। उसके बीच की सड़क पर सब प्रकार की गाड़ियां—पुराने रिक्शों से लेकर आधुनिक से आधुनिक माडल की गाड़ियां तक थीं। रिक्शे अब पहले की-सी इज्जत तो नहीं पाते पर उनका रोजगार अब भी कुछ कम नहीं। उनको बराबर दौड़ते देखा। निजी मोटरों के हट जाने से रिक्शों की जरूरत चीन में बढ़ भी गई है। भीड़ कुछ बहुत नहीं थी। सादे चीनी लोग दिन के काम के बाद हवा खाने निकल पड़े थे। कुछ दफ्तरों से देर में लौटे थे, कुछ मित्रों के यहां से, कुछ तेजी से कदम उठाए जा रहे थे। लड़के और लड़कियां, जहां वे अकेले न थे, आराम से चहलकदमी कर रहे थे, तनने-

हँसते। कहीं बुखार की तेजी न थी, बौखलाई भागदौड़ न थी। न्यूयार्क याद आया जहाँ कि तेजी की बस कुछ न पूछो। लोग किसी अदृश्य यंत्र से संचालित प्राणियों की तरह चुपचाप एक गति से, गति की एक रफ्तार से, निरन्तर चलते रहते हैं, जैसे कहीं आग लगी हो।

पहली अक्तूबर के लिए मैदान सज रहा है। पहली अक्तूबर चीनी जनतन्त्र का राष्ट्रीय-दिवस है। लाल रंग विशेष दृष्टिगत है। उसीसे खम्भे ढके हैं, इमारतों के द्वार सजे हैं, स्तम्भों के शिखर भी। जहाँ कहीं मेहराब या द्वार हैं वहाँ उनमें तीन-तीन, पांच-पांच की संख्या में छोटे-बड़े अत्यन्त आकर्षक भालरदार चटकीले लाल गुब्बारे लटक रहे हैं। इन गुब्बारों से त्योहारों पर इमारतों को सजाना यहाँ आम बात है। इस वक्त भी सफाई जारी है और फटपाथों पर जो लोग काम कर रहे हैं उनकी खिलखिलाहट से जाहिर है कि काम में उनका मन लगा हुआ है।

किया, मधुर शब्दों में भारत और चीन की प्राचीन मैत्री की ओर संकेत किया। डाक्टर किचलू ने समुचित उत्तर दिया। चीनी डिनर शुरू हुआ। हल्की आवाज़ें, किलकारियाँ और दबी खिलखिलाहट, बार-बार झुकते सिर, मुस्कराते चेहरे।

रात बड़ी छोटी लगी। दिन की लम्बी उड़ान और शाम की हवाखोरी के बाद गहरी नींद सोया। आज उठते ही तुम्हारी याद आई, लिखने बैठ गया, घर खत लिख चुका हूँ और आशा करता हूँ कि तुम लोग अपने खत एक-दूसरे से बदलकर यहाँ की हर बात जान लेती होंगी। डाक्टर अलीम उठ चुके हैं और मुझे भी झट तैयार हो जाना है। हमारा दल पेई-हाई, उत्तर सागर का पार्क, देखने जा रहा है। पेई-हाई राजकीय शीत-प्रासाद है।

स्नेह और आशीर्वाद।

तुम्हारा,
भइया

कुमारी पद्मा उपाध्याय,
प्रिन्सपल, आर्यकन्या पाठशाला
इन्टर कालेज,
खुर्जा, उत्तर प्रदेश।

पीकिंग,

२२-९-५३

प्रिय देवव्रत,

पीकिंग से लिख रहा हूँ, करीब पांच हजार मील दूर से। यह दूरी हवा की राह है, समुन्दर की राह और लम्बी है। परसों शाम ही यहाँ पहुँच गया था, पर अभी तक कमरे में जम न सका। शायद जम कभी न सकूँगा। दिन इधर-उधर फिरने, दर्शनीय और ऐतिहासिक स्थान देखने में गुजर जाता है—उनकी इस महानगर में भरमार है, शाम बैठकों, भोजों और थिएटर आदि देखने में खत्म हो जाती है, रात बहुत छोटी लगती है, वास्तव में रुचि और जिज्ञासा के दण्डस्वरूप जो दिन में दौड़-धूप होती है उसके सामने रात बड़ी छोटी हो ही जाती है, मिनटों में बीत जाती है। दो दिन पहले जो चीज जहाँ डाल दी थी वह आज भी वहीं पड़ी है। शायद यहाँ से चलते वक्त जब तक उन्हें बक्स में न डाल लूँगा वहीं पड़ी रहेगी।

पेई-हाई के एक-पर-एक बिछे पार्कों की ऊंचाई चढते गर्मी बढ चली है। फिर भी इलाहाबाद की गर्मी, पिघला देने वाली गर्मी, यहां नहीं है। पेई-हाई पीकिंग के सुन्दरतम स्थानों में है। जितना ही उसे प्रकृति ने संवारा है उतना ही मनुष्य ने। प्रकृति ने पर्वती आधार के रूप में जो कुछ उसे प्रदान किया है उसके मस्तक पर मनुष्य ने जैसे ताज रख दिया है। जगह मुझे बहुत भाती है। कलासम्बन्धी मेरी कमजोरी तुम जानते हो। इधर हाल में वह कमजोरी और बढ़ गई है। विद्याव्यसनी हूँ, साहित्यिक और ऐतिहासिक अध्ययन में मन रम जाता है। कला ने तरुणाई में ही आकृष्ट किया था, यद्यपि साहित्य का मोह बराबर अधिक रहा। पर जैसे-जैसे उम्र बढ़ती जाती है, जैसे-जैसे अवकाश म कमी होती जाती है, आंशिक विषय में भी अप-टु डेट होने की सम्भावना मरीचिका बनती जा रही है और ढेर-की-ढेर पोथियां पढकर विद्वान् कहलाने का घमण्ड चरितार्थ होने लगा है, वस्तुत तब छपी सामग्री देख जी उकता उठता है, मन में उसे देख एक सहमा-सा छा जाता है और तब कला की मूक कृतियों का आकर्षण कितना सुखद प्रतीत होता है। जीवन की सारी कुरुचि, सारी परुषता, उन कृतियों के दर्शन से नष्ट हो जाती है, उनका प्रकाश चेतनता के अंतरंग को आलोकित कर देता है। पेई-हाई जाना जैसे फल गया।

यह राजधानी का सुन्दरतम आमोद-उद्यान है। सदियों तक सम्राटों का एकान्त प्रमदवन रहा था। आज उसका सौन्दर्य अवरुद्ध नहीं, सार्वजनिक उपभोग की वस्तु है। उसके फाटक सर्वसाधारण के लिए खुल गए हैं। नाम मात्र को शुल्क लगता है और उस शुल्क का रेट सुना कि सुनो तो मुस्करा दो क्योंकि वह शुल्क कद की छोटाई ऊँचाई के मुताबिक कमबेश लगता है। हम सभी की ऊँचाई कायदे की थी, मसलन, जिससे हम, जैसा किसी ने कहा, तोरण-द्वार से प्रवेश कर सकें।

फैले झील में पार्क का सारा जिस्म और ऊँचा मन्दिर प्रतिबिम्बित होता रहता है। इसी मन्द समीर से हल्की लहराती जलराशि के तट पर

इ लम्बी सदियो के दौरान में महान् सम्राटो ने क्रीडा की है और चीन के युद्धपतियो को आमोद और व्यसन का पाठ पढ़ाया है, उनके लिये विलास की मजिलें खडी की है। वहां हम उस सम्मोहक पहाडी पर नीचे-ऊपर फिरते रहे जहां के कण-कण में युग के भेद भरे है, क्रूर और कामुक।

झील का नाम उचित ही उत्तर-सागर पडा है। उसके तट पर अनेक वन्य निकुज है। सारा तट पेडो के झुरमुटो से ढका है। तट पर कमल का हाशिया-सा बन गया है। अकेली कलिया फैली पद्म-सम्पदा के ऊपर कमल नालो पर मस्ती से झूम रही है। दृश्य अभिराम है, सामने का विस्तार आकर्षक, निदाघ का समीर मादक।

हम पेई-हाई में पीछे से दाखिल हुए थे, नगर की ओर से चट्टानी जमीन पर। पुल पारकर दीर्घिकाओ की ओर बढे। उनमें रग-बिरगी नयनाभिराम छोटी मछलिया थीं। फिर निर्जन लकडी के द्वार से होकर निकले, द्वार जिन पर पुराने रग आज भी चमक रहे थे—सुनहरे, नीले, लाल, हरे। मजिल-पर-मजिल मारते हम चढ चले, ऊपर चोटी की ओर। प्रकृति सम्मोहक न होती तो निश्चय चढाई खल जाती।

पेई-हाई के एक-पर-एक बिछे पार्कों की ऊंचाई चढ़ते गर्मी बढ़ चली है। फिर भी इलाहाबाद की गर्मी, पिघला देने वाली गर्मी, यहां नहीं है। पेई-हाई पीकिंग के सुन्दरतम स्थानों में है। जितना ही उसे प्रकृति ने संवारा है उतना ही मनुष्य ने। प्रकृति ने पर्वती आधार के रूप में जो कुछ उसे प्रदान किया है उसके मस्तक पर मनुष्य ने जैसे ताज रख दिया है। जगह मुझे बहुत भाती है। कलासम्बन्धी मेरी कमजोरी तुम जानते हो। इधर हाल में वह कमजोरी और बढ़ गई है। विद्याव्यसनी हूं, साहित्यिक और ऐतिहासिक अध्ययन में मन रम जाता है। कला ने तरुणाई में ही आकृष्ट किया था, यद्यपि साहित्य का मोह बराबर अधिक रहा। पर जैसे-जैसे उम्र बढ़ती जाती है, जैसे-जैसे अवकाश में कमी होती जाती है, आशिक विषय में भी अप-टु डेट होने की सम्भावना मरीचिका बनती जा रही है और ढेर-की-ढेर पोथियां पढ़कर विद्वान् कहलाने का घमण्ड चरितार्थ होने लगा है, वस्तुत तब छपी सामग्री देख जी उकता उठता है, मन में उसे देख एक सदमा-सा छा जाता है और तब कला की मूक कृतियों का आकर्षण कितना सुखद प्रतीत होता है। जीवन की सारी कुरुचि, सारी परुषता, उन कृतियों के दर्शन से नष्ट हो जाती है, उनका प्रकाश चेतनता के अंतरंग को आलोकित कर देता है। पेई-हाई जाना जैसे फल गया।

यह राजधानी का सुन्दरतम आमोद-उद्यान है। सदियों तक सम्राटों का एकान्त प्रमदवन रहा था। आज उसका सौन्दर्य अवरुद्ध नहीं, सार्वजनिक उपभोग की वस्तु है। उसके फाटक सर्वसाधारण के लिए खुल गए हैं। नाम मात्र को शुल्क लगता है और उस शुल्क का रेट लिखा है, सुनो तो मुस्करा दो क्योंकि वह शुल्क कद की छोटाई-ऊंचाई के मुताबिक कमबेश लगता है। हम सभी की ऊंचाई बराबर की थी, सयानों, जिससे हम, जैसा किसी ने कहा, तोरण-द्वार में प्रवेश कर गए।

फैले झील में पार्क का सारा जिस्म और ऊंचा मन्दर प्रतिबिंबित होता रहता है। इसी मन्द समीर से हल्की लहराती जलराशि के तल पर

छः लम्बी सदियों के दौरान में महान् सम्राटों ने क्रीडा की है और चीन के युद्धपतियों को आमोद और व्यसन का पाठ पढ़ाया है, उनके लिये विलास की मंजिलें खड़ी की हैं। वहां हम उस सम्मोहक पहाड़ी पर नीचे-ऊपर फिरते रहे जहां के कण-कण में युग के भेद भरे हैं, क्रूर और कामुक।

झील का नाम उचित ही उत्तर-सागर पड़ा है। उसके तट पर अनेक वन्य निकुंज हैं। सारा तट पेड़ों के झुरमुटों से ढका है। तट पर कमल का हाशिया-सा बन गया है। अकेली कलियां फैली पद्म-सम्पदा के ऊपर कमल नालों पर मस्ती से झूम रही हैं। दृश्य अभिराम है, सामने का विस्तार आकर्षक, निदाघ का समीर मादक।

हम पेई-हाई में पीछे से दाखिल हुए थे, नगर की ओर से चट्टानी जमीन पर। पुल पारकर दीर्घिकाओं की ओर बढ़े। उनमें रंग-बिरंगी नयनाभिराम छोटी मछलियां थीं। फिर निर्जन लकड़ी के द्वार से होकर निकले, द्वार जिन पर पुराने रंग आज भी चमक रहे थे—सुनहरे, नीले, लाल, हरे। मंजिल-पर-मंजिल मारते हम चढ़ चले, ऊपर चोटी की ओर। प्रकृति सम्मोहक न होती तो निश्चय चढ़ाई खल जाती। बीच-बीच में रुक-रुक पेड़ों की छाया में दम ले-ले हम ढाल की राह बढ़े। डा० अलीम ने एक छड़ी खरीदा। जादू की लकड़ी-सी लगती थी वह, वहीं की हवा में पली। उसके गोल मुँह पर अक्षर खुदे थे—'पेई-हाई'। थी तो यह यादगार, पर शौकीन डाक्टर के लिये उस चढ़ाई पर वह खासी सहारा साबित हुई। वरना डाक्टर कभी चढ़ने के लिये छड़ी न खरीदते।

यह इमारत १६५२ में पुराने खडहरो के आधार पर खडी हुई, उस तिब्बती शासक की यादगार में जो दलाई लामा का अभिषेक कराने आया था। इससे चीन पर तिब्बत की ऐतिहासिक निर्भरता भी प्रमाणित है। मध्यकाल से ही दलाई लामा पहाड लाँघ, रेगिस्तान पार की यात्रा कर चीन की बराबर बदलती राजधानी पीकिंग या नानकिंग पहुँचते थे, अभिषिक्त होकर शासन की बागडोर धारण करते थे। यह स्तूप उन्हीं अभिषेको में से एक का स्मारक है।

हम पीकिंग नगर के ऊपर स्वच्छन्द हवा में खडे हैं, आकाश के चँदोवे तले, उसकी नीली गहराइयो में खोए। बाईं ओर आवासो का वह विस्तार है जो स्मृति-पटल से कभी मिट नहीं सकता—पीली दीवारों से घिरे, कतार पर कतार उठती दूर तक फैली चमकीली पीली खपडैलो की छतो से ढके साम्राज्य, प्रासाद, मन्दिर और विमानावृत भवन—मन्चु सम्राटो का विख्यात 'अवरुद्ध नगर।' सामन्तीगढ! भेद भरा, भयावह!

'स्वर्ण द्वीप' नगर के पुल द्वारा जुड़ा हुआ है। पर हम उससे न जाकर नावों से चले। पास की इमारत के छज्जे पर पी हुई चाय ने रोमैंटिक चेतना जगा दी थी और पानी की सतह पर तिरती हुई नावों पर हम जा बैठे, जिनके स्पर्श से मौन राग रचे थी।

बर्बादी की आवाज पुकार रही है। जमीन की फटी छाती आदमी के स्पर्श से जैसे कांप रही है।

एक छोटे टीले के पीछे सुन्दर छोटी पोर्स्लेन की दीवार है, वस्तुत दीवार का केवल इतना हिस्सा इन्सान के वर्बरपन से बच रहा है। उसकी जमीन पर अनेक रंगीन अजदहे बने हुए हैं, ऊँचे उत्कीर्ण, हरी लहरों के बीच नीली चट्टानों पर फिसलते, कुंडली भरते, विकराल फनों को हवा में हिलाते, खेलते—कला की अनोखी कृति। अजहदों का विशाल आकार उनकी शक्ति का परिचायक था। अजहदे चीनी परम्परा में भूमि और उपज के देवता हैं, अकाल के शत्रु। दीवार पुरानी है पर इसकी टाइलों के हरे, सुनहले और नीले रंग जमाने की रवानी को जैसे मंजूर नहीं करते, आज भी चमक रहे हैं। दीवार, लगती है, जैसे आज की ही बनी हो। केवल मनुष्य की दुःशीलता ने उसे नष्ट करने में कुछ उठा नहीं रखा है।

हममें से अनेक इन्सान के इस शर्मनाक कारनामे को देख तड़प उठे। मैं विशेषकर। जानते हो इन्सान के हथौड़े से टूटे रत्नराशियों का कभी तरखर हो चुका है।

हमारी बसें तट घूमकर आ गई थीं। प्रतीक्षा में खड़ी थीं। पेई-हाई की हमने कुछ तस्वीरें खरीदी और होटल लौट पड़े। लंच इन्तजार कर रहा था।

पीकिंग,

२४-६-५२

प्रियवर टडन जी,

जब से आया लगातार पुराने खडहरो में घूम रहा हू, ऐतिहासिक भग्नावशेषों और खडी इमारतो में। महान् निर्माता थे ये पुराने। हमारे अपने ही कितने महान् थे !

वे जिन्होंने ताज खडा किया, अजन्ता और एलोरा की गुफाए काटी और उनकी सूखी दीवारों को दर्पणवत चिकनाकर उन पर अभिराम चित्र लिखे। फिर वे जिन्होने पिरामिड वनाए, सिकन्दरिया का आलोक स्तम्भ बनाया, रोड्स् का कोलोसस।

चीन प्राचीन भवनो की शालीनता में असीम समृद्ध है और पीकिंग उस समृद्धि का केन्द्र है, उस शिल्प का प्रधान पीठ, चुना हुआ स्थल। कितना देखना है यहाँ—पीकिंग की दीवारें, ग्रीष्म और शीत-प्रासाद, पोर्स्लेन पगोडा, राष्ट्रीय वेधशाला, अवरुद्धनगर और उनके विशाल तोरण-द्वार, आखेट पार्क-पगोडा, द्यौस् (आसमान) का मदिर और नगर से कुछ ही घठों की यात्रा की दूरी पर वह अद्भुत चीनी दीवार। द्यौस का मदिर पीकिंग की शालीन इमारतों में है। आज वही जाना निश्चित किया। शान्ति-सम्मेलन के भारतीय प्रतिनिधियों की सख्या नित्यप्रति बढ़ती जा रही है। आज सुबह दो बसों में हम सब मदिर पहुँचे। तिन-नान मेन के सामने के मैदान से सडक सीधी मदिर के उपवनों की ओर जाती है। हमारी बसें मदिर के प्लेटफार्म के ठीक नीचे सीढिया के पास रुकीं। प्रशस्त प्लेटफार्म पर फौज की एक टुकडी परेड कर रही थी। हमारे दोनों ओर कूटी-चनाई जमीन पर स्कन्धावार बने थे। सिपाही

की कतारें दूर तक दोनो ओर चली गई थीं। स्पष्टत सेना वहां पड़ाव डाले पड़ी थी।

ताली और स्वागत। मुस्कराहट और अभिवादन। ताली लगातार बजती जा रही है, उसकी ध्वनि पेड़ों में गूंज रही है। यह सैनिक है जो शिविरो में सफाई कर रहे है, भोजन बना रहे है, आराम कर रहे है। नाटे, पीले, गठे, फुर्तीले सिपाही। वे हमें जानते है। शान्ति-सम्मेलन और उसके प्रतिनिधियो को सारा चीन जानता है। हम ताली बजाकर, अपनी हैट उठाकर प्रत्यभिवादन करते है। वे सरककर हमारे पास आ जाते है और शब्दो द्वारा अपने उल्लास का प्रदर्शन करते है। शब्द हम समझ नही पाते पर उनकी उदार अभिव्यक्ति का बोध भला किसे न हो सकता था? छिटकी चांदनी सी मुस्कराहट। हंसती हुई तरल आखें। छोटे कदो में आकाश-से-से व्यापक हृदय।

सामने प्लेटफार्म दूर तक उत्तर-दक्खिन फैला हुआ है सोपान-मार्ग से हम ऊपर चढते है। दूर दोनो ओर विशाल फाटक है। द्यौस् का मदिर तीन शालीन इमारतो का सुन्दर समूह है, दो ऊंची इमारतें जो आकाश के नीले चंदोवे को बेध रही है, और तीसरी द्यौस् की संगमरमर की दलिवेदी जो अपना चौड़ा वक्ष उघाड़े आकाश के नीचे नगी पड़ी है। तीनो नगर से दूर पूर्व मे है।

के महान् निर्माताओ ने—सारासेनों, मुगलो और अवध के नवाबो ने—लगता है अपने पूर्ववर्ती इन चीनी निर्माताओ के फैले आंगनो के शिल्प का जादू चुरा लिया था। इनकी मस्जिदो, मकबरो, इमामबाडो में घेरी हुई खुली जमीन इसका साक्षी है।

'सुखी साल का मंदिर' अपनी संगमरमर की तेहरी बेदी पर खडा है। थ्येन् की तीनों इमारतो में सबसे शालीन, उच्चतम। प्राचीनकाल के पुरोहित-राजाओं की भांति अपनी प्रजा के प्रतिनिधि के रूप में केवल सम्राट् थ्येन की बलिवेदी पर बलि चढाता था। बीच का वह भवन इस अद्भुत समूह का केन्द्र है। इसके विशाल किवाडो के पीछे प्रजा के जनक और पवित्र थ्येन के महान् पुत्रो को समर्पित देवतुल्य पट्टिकाएँ रखी हैं। वर्तुलाकार भवन अपनी संगमरमर की वेदिकाओं से चमक रहा है। उसकी जाली सुन्दर सादगी लिये हुए शान्त खडी है, ऊँची गहरी उस छत की छाया में जिसका मस्तक चमकती नीली खपडैलो से मंडित है। चमकती धूप में जब आकाश की नीलिमा ताम्राभ हो जाती है तब इन खपडैलों का राज देखिये। बरसती सूरज की किरणों को अपने कण-कण पर रोपती खपडैलें नजर पर छा जाती हैं। फिर उनका तेज आँखें नहीं निहार पातीं।

फैले आंगन मेरे अनजाने न थे। देश के इमामबाडे और मकबरे मेरे देखे थे और दक्खिन भारत और उडीसा के वे मंदिर भी जिनकी विमान-भूमि अपने आवर्त में जैसे आसमान लपेटे हुए है। मुझ पर जिसका गहरा प्रभाव पडा वह वास्तव में दीवारें न थी और न इमारतों की ऊँचाई ही, बल्कि उनके मूक मस्तक, और एक के ऊपर एक चढ़ी रंग-बिरंगी लकडी की खपडैली छाजन। ऊँचाई का बोझ जो एक प्रकार से मन पर हावी हो जाता है, उसे उनका अभिराम आकर्षण दूर कर देता है। नेत्रों में जैसे उनका कमनीय लोच तरंगित हो उठता है। चीनी इमारतों की यह छतें हल्की लहर के आकार में बनी भी होती है। उनका मस्तक सुकुमार भावना का जैसे प्रतीक है जिसे गौर की

स्वच्छन्द वायु परसकर देहात की ताजगी तो प्रदान करती है पर उसकी नागर अभिजातीयता को ग्राम्य नहीं बना पाती।

क्या ही भव्य इमारत है। बाहरी आंगन तीन मील दौडती लम्बी दीवारों से घिरा है। भीतरी आंगन की परिधि १२ हजार फुट है। दीवारें बलिवेदी के गिर्द वर्गाकार पवित्र पट्टिकाओ के मदिर के गिर्द वृत्ताकार। फिर भडारों को घेरने वाली दीवारें, बलिगृह के चतुर्दिक दीवारें। बाहरी आंगन में दो विशाल द्वार है, भीतरी में चार। प्रत्येक द्वार के अपने-अपने नाम हैं। नाम इतने शालीन कि ऊंचे आकाश को छू लें। वस्तुत पीकिंग की सारी इमारतें और उनके द्वार, वैसे पीकिंग ही क्यो सारे चीन की भी, अपने-अपने नाम से विख्यात हैं, नाम जो सदा 'शान्ति का' बोध कराते हैं और आकाश की अनन्तता का। आकाश का कम, शान्ति का अधिक। इससे एक बार तो हमें सन्देह भी हुआ कि यह नाम इनके शान्ति-सम्मेलन के उपलक्ष में तो नहीं रख दिये गये। परन्तु हमारा सन्देह निराधार था। नाम पुराने थे, सदियो पुराने, जितने स्वय उन्हे धारण करने वाले यह भव्य भवन। इसी प्रकार खास के मदिर के भीतरी आगन के द्वारो के भी अपने-अपने नाम थे। जो पूर्व में है उसका नाम है 'विश्व सृष्टि का द्वार', दक्षिण के दरवाजे का अनुवेधक 'प्रकाश का द्वार', पश्चिम का 'महान् उदारता का द्वार' और उत्तर के दरवाजे का 'पूर्ण भक्ति का द्वार'। नामो में जिन आचारो की सज्ञा निहित है वे स्वच्छन्द पार्थिव हैं, दैनिक जीवन में आचरित होने वाले।

मच उठती वेदियों के बराबर। संगमरमर की सफेदी में लिपटी, दोहरी दीवारों से घिरी पूजा की यह वेदिया ससार की धूल-मिट्टी से सर्वथा सुरक्षित हैं। ससार की दृष्टि से दुरित, पर आकाश के नीचे इतनी खुली कि उसकी कोमलतम साँस उनको चूम ले, दूर से दूर का लघु से लघु तारा जिससे उन्हें अपने आलोक से छू ले।

वृत्ताकार सुन्दर मन्दिर की दीवारो के भीतर भीड की आखो से छायाओं की मूकता में सांस लेती एक पट्टिका जडी है। वह देवत्व की सबसे पवित्र प्रतिमा है, चीन की असख्य जनता की पूज्य, परन्तु उसे चीन की जनता ने कभी न पूजा, अथवा जिसे पूजने का कभी उसे अधिकार न मिला। द्योस के देवत्व की प्रतीक 'शाग ती' पट्टिका नौ सीढियों के तराशे संगमरमर के ऊँचे गोल आधार पर खडी है। आधार की नौ सीढ़ियां स्वर्ग के नौ लोको की प्रतीक हैं जो हाथीदात जडे कटी झिलमिली से छिपे आधार को उठाये हुए हैं। उनके ऊपर नौ सीढ़ियाँ लकडी की हैं। वह भी मोटे पीतल की जडाई की हैं जो सिंहासन के आधार तक जा पहुँचती है। वहाँ एक छोटा-सा द्वार है जिसके पीछे वह पवित्र सन्दूक है जिसमें पवित्रतम अभिलेख सुरक्षित है। खोजती आखों से दूर छिपी, फीरोजी चमकती जमीन पर चमकते सोने के उभरे अक्षर जिन्हें सिवा कुछ पुरोहितो और सम्राटो के किसी ने न देखा।

पूर्वी आकाश की चोटी छूता चमकता नीला गुम्बद दूर से ही दृष्टि आकृष्ट करता है। एक के ऊपर एक चढ़ी संगमरमर की वेदिकाओं पर बना 'सुखी साल का मन्दिर' ९९ फुट ऊँचा है। उसके मस्तक की छत तेहरी है, नीली खपरैलों से मडित सोने की चाँदनी से टकी है। शिल्प का वह अद्भुत विस्तार! ऊँचे स्तभ, जैसे कहीं न देखे, इमारत की बुलन्दी जैसे सिर से उठाए हुए। हैं वे महज लकडी के, पर डोरियन, कोरिंथियन, आयोनियन स्तभो से कहाँ अभिराम, संगमरमर से कहीं शालीन। जडे हुए चार विशाल स्तभ ऊपरी छत का टेके हुए हैं, और १२ लाल खभे, जो अकेले पेडों के तने हैं, निचली छतों को उठाए हुए हैं। सीढ़ियों

की जमीन पर तो अजदहो की आकृतियां उभरी ही हुई हैं, उधर ऊपर छत के खानों में भी उनकी आकृतियां कुंडली भरती जैसे सरक रही हैं। लगता है नीचे के अजदहे ऊपर पहुंच गए हैं और उनके फन फुफकार-फुफकार मानो हवा पी रहे हैं। चीन के विश्वास में चाहे इनका स्थान कल्याणकार ही क्यों न हो, इन्हें देखकर हमारे मन में शिव-कल्पना के बजाय त्रास का संचार हो आता है। ऊपर के खाने अपने चमकते रंगों से तो रोशन हैं ही सुनहरी लकीरें भी उन पर अपना कान्ति बिखेर रही हैं। खिड़कियों की जाली मनोरम है। सुन्दर लाल विशाल किवाड़ पीतल के चमकते मोटे कब्जों पर अटके हुए हैं और उनके सामने की जमीन सुनहरी पीलों से समूची मंडित है।

'दक्षिण वेदी', तिएन तान, संगमरमर की तीन वर्तुलाकार वेदियां हैं। उसकी आधार वेदी २१० फुट, बीच की १५० फुट और ऊपर की ९० फुट चौड़ी है। प्रत्येक वेदी सुन्दर कटी रेलिंग से घिरी हुई है। ऊपरली वेदी जमीन से १८ फुट ऊंची है और संगमरमर की पट्टियों से ढपी है। पट्टियों की पंक्तियां नौ हैं और नवों समान-केंद्रीय हैं। सब से अन्दर वाली नौ पट्टियां बीच की एक पट्टी को घेरे हुए हैं जिसे यहां के पुराण-पंथी विश्व का केन्द्र-बिन्दु मानते हैं। पूर्वजों और आकाश की पूजा करता हुआ सम्राट् ऊपरी वेदी की इसी केन्द्रीय पट्टिका पर घुटने टेकता था।

पालकी पर निकलता था। जलूस में रगों का बेशुमार प्रदर्शन होता। भडकीले वस्त्रो में सजे सवार खोजे यज्ञ का सामान लिये चलते। फिर चीते की दुम धारण करने वाले रक्षको की सेना चलती। बाद मक्खन रग की साटन की वर्दी पहने राजकीय सईस। तिकोने मखमली झडों पर अजदहो की शक्ल बनी होती और उन्हें ले चलने वाले स्वय अमित संख्या में होते। धनुष बाण लिये घुडसवारों की कतार अपनी पीली काठी से दूर से ही पहचानी जा सकती थी। नितान्त सन्नाटा छाया रहता। उस मृत्यु सरीखी चुप्पी के बीच सम्राट् का जलूस चुपचाप अलक्ष्य बढता जाता। उस चुपचाप सरकते जलूस पर किसी को एक नजर डालने का भी अधिकार न था। जलूस की राह में खुलने वाली सारी खिड़कियाँ बन्द कर दी जातीं और गलियो के मोड नीले पर्दों से ढक दिये जाते। लोगो को बाहर निकलने का हुक्म न था, सबो को घरो के भीतर बन्द रहना पडता। सम्राट् उस सन्नाटे में चमकती हरी कन्-डीलों के नीचे सरों की हल्की मरमराहट सुनता चुपचाप उषा-पूर्व के उस भेद-भरे पल की प्रतीक्षा में खडा रहता जब उसके पुरखों की आत्माएँ मँडराती बलि के लिये प्रवेश करतीं। युग ली और कोआग हेंगी अथवा चिएन लुग के-से साम्राज्य-निर्माता चुपचाप वहाँ खडे सोचते, विचारते, सकल्प करते, प्रार्थना करते रहते जहाँ केवल लम्बी-ठण्डी रात्रि की स्तब्धता और स्वय अपनी चेतना उनकी सहायक होती। उस रात से दो दिन पहले से वे व्रत रखते और मन को सारे बाहरी विषयों से मोड कर देवता के प्रति लगाने का प्रयास करते। इस प्रकार चित्त-वृत्ति का निरोध कर वे पाप और हृदय की दुर्बलताओं को दबाने का प्रयत्न करते जिससे उस पुण्य पल में आकाश की आत्मा और उसके पुरखे अपना आशीर्वाद अपनी सन्तान को दे सकें। यह बलि आकाश की आत्मा को हर गर्मी और सर्दी में दी जाती थी। यज्ञ का समय सूर्योदय से पहले नियत होता था जब रात का अंधेरा चराचर पर छाया होता और ब्राह्म-मुहूर्त की शीतल वायु मन्द-मन्द बहती होती। तभी पवित्र परिक्रमा का

जलूस निकलता। पट्टिकाएं लाई जातीं।

फिर पुरोहित गभीर ध्वनि में खड़े लोगो को आदेश करता—'गायको और नर्तको, मन्त्रोच्चारको और पुरोहितो, सब अपने कर्त्तव्य करो।' तब शान्ति की ऋचा गम्भीर स्वर में सहसा गूंज उठती। यह लिखते मुझे स्वय यजुर्वेद का शान्ति-प्रसग स्मरण हो आया है—'द्यौ शान्तिरन्तरिक्ष शान्ति पृथिवी शान्तिराप शान्तिरोषधय शान्ति। वनस्पतय शान्ति-विश्वदेवा शान्तिब्रह्म शान्ति सर्व शान्ति शान्तिरेव शान्ति सा मा शान्तिरेधि।'

शान्ति के ऋचा-पाठ के बाद नगाड़ो की ध्वनि के साथ बजते वीणों वाद्य-स्वरो के बीच सम्राट् उच्चतम वेदी पर धीरे-धीरे चढ़ जाता जहाँ विश्व की आत्मा उसे ऊपर से घूरती। ८१ बार क्रिया के बीच वह घुटने टेकता। पूजा नि सन्देह कठिन थी।

जब हम आंगन से निकलकर बाहर चले तो प्लेटफार्म पर परेड करते फौजियो ने सैल्यूट किया। उनके चेहरो से जाहिर था कि हमें देख कर वे प्रसन्न हो उठे हैं। उन्होंने तालियां बजाईं। उनकी पद-ध्वनि बड़ी प्रभावशाली लगती थी। वे राष्ट्रीय दिवस पहली अक्तूबर के लिये तैयार हो रहे थे।

हैं। ये दोनों कर रहे हैं, पुराने की रक्षा भी, नये का निर्माण भी।

रात काफी जा चुकी है। देर से लिख रहा हूँ। खुली खिड़की के पास खुले मुंह, यद्यपि कमरे के अन्दर बैठा हूँ। रात की नम हवा ठंडी वह रही है। पर नम हवा भी आखिर पीकिंग की रात की है, सर्द। और जैसे-जैसे रात बढ़ती जा रही है हवा की सर्दी भी बढ़ती जा रही है। आधी रात की नमी मेरे अन्तस्तल में गहरी चुभ रही है। लिखना बन्द कर अब बिस्तर की ओर रुख करता हूँ। आप और श्रीमती टंडन को प्रणाम। सितारे को प्यार।

आपका ही,
भगवत शरण

श्री रामचन्द्र टंडन,
हिन्दुस्तानी एकेडेमी,
कमला नेहरू रोड,
इलाहाबाद

पीकिंग,

२५-९-५२

प्रिय नागर,

अपराधी हूँ, एक जमाने से तुम्हें लिखा नहीं। चीन आने के पहले ही खत लिखने वाला था, पर व्यस्त होने के कारण लिख न सका। हजार कोशिश की पर समय न मिला। और आज हजारों मील दूर पीकिंग से लिख रहा हूँ। यकीन है, देर के लिये बुरा न मानोगे।

पीकिंग पहली अक्तूबर की तैयारियों में लगा है। तैयारियां शान्ति-सम्मेलन के लिये भी बड़े जोर से हो रही हैं। एशिया और दोनों अमे-रिकों के अधिकतर देशों से प्रतिनिधि पहुँच गए हैं। कुछ आज पहुँच रहे हैं। काफी एक बड़ी तादाद अब तक चीन पहुँच चुकी है और पीकिंग की राह में है। कुछ प्रतिनिधियों को मौसम खराब होने से प्राग और मास्को रुक जाना पड़ा है। कोहरा छँटा कि वे उड़े। अनेक यूरोपियन, जो प्रतिनिधि नहीं हैं, राजधानी में हैं। वे मित्र-राष्ट्रों के प्रतिनिधियों के रूप में पहली अक्तूबर के जलसे में शामिल होने आए हैं।

शान्ति के लिये ही मरा, निश्चय ऐमे अवसर के लिये ग्राह्य था। सभी प्रतिनिधि-मडलो ने अनुकूल स्वीकृति दे दी। ससार की जनता गांधी को कितना प्यार करती है। नागर, उसके अमन के उसूलों की कितनी कायल है! आज २५ है और कल २६, और दूसरी अक्तूबर है हफ्ते भर बाद। बडी अहम् बात है, नागर, हफ्ते भर कान्फ्रेन्स को टाल देना। हफ्ता भर रुक रहना कुछ आसान नहीं, न उनके लिये जो हजारो मील चलकर यहाँ पहुँचते हैं और न उन्हीं के लिये जो इतने आराम का आतिथ्य करते हैं। बाहर से आनेवालो का तो लमहा-लमहा अमोल है और उनका हफ्ते भर रुक जाना अमन और हिन्दुस्तान के प्रति उनका असीम उत्साह और आदर प्रगट करता है। काश हिन्दुस्तान के हमारे भाई इस राज को समझ पाते! पर मुझे डर है कि जो तथाकथित जनतान्त्रिक जगत् के समाचार-वितरण की एजन्सियाँ 'कन्ट्रोल' करते हैं वे इस प्रकार की खबर को कहीं छपने न देंगे और यह भारतीय दृष्टिकोण की विजय अन्धकार में ही पडी रह जायगी। पर आवाज है कि कव्र की छाती फाड़ पुकार उठती है, नूर है कि सौ स्याह परतों को छेद जाता है।

गरज यह कि मुझे चीन और उसके वाशिन्दों को देखने जानने को एक हफ्ता और मिल गया। और इस मौके का मैं यकीनन सही इस्ते-माल करूँगा। शान्ति समिति स्वय बेकार नहीं बैठी है, रोज बरोज नई-पुरानी जगहें दिखाने का इन्तजाम करती है। हम आज ही प्रसिद्ध चीन की महान् दीवार देखने गए थे। नीचे उसका एक ब्योरा देता हूँ, यकीन है पसन्द आएगा।

था। हवा में चुहल भरी थी, हँसी के फव्वारे फूट रहे थे। बधाइयाँ, स्वागत के शब्द, कान में कहे स्नेह भरे शब्द अनजानी जबानों में अनसुने मुहावरों में हवा में लहरा रहे थे। कितनी तरह की जबानें, इसका तुम अटकल नहीं लगा सकते। आवाज़ें प्यार से बोझिल, पर ऐसी कि कोई भाषा-शास्त्री उनका वर्गीकरण न कर सके। हाँ, पर नासमझ को भी अपने भाव से भर देने वाली। पूरब और पच्छिम का सही सम्मिलन।

नई, बिल्कुल माडर्न, स्पेशल ट्रेन हमें देहात पार ले चली। पीकिंग की विशाल भूरी दीवारों के साए में हम चले, बार-बार दीवारें दूर हो जातीं, बार-बार उनके परकोटे सिर पर किले उठाए हमारे ऊपर छा जाते। हाथ बढ़ाते उंगलियां उन्हें छू लेतीं। ट्रेन हरे-भरे मैदानों के बीच हमें ले चली। काओलिआंग के हिलते हरे खेतों के बीच, पुराने सरहदी शहर नानकाऊ के परे, उधर चिहली की पहाड़ियों में उसने हमें ला उतारा।

महान् दीवार दूर के क्षितिज को चूमती पहाड़ों के सिरों पर फिरती, प्रकृति के मस्तक पर पहनी माला की तरह लग रही है। दैत्य की-सी उसकी पहर-बुर्जियां, दैत्य के-से उसके दाँतदार परकोटे—अनन्त कड़ियों की अनन्त शृंखला। दीवारें जो देश के प्राचीन पहरुए रही हैं, पहाड़ों के ऊपर अद्भुत सुन्दर आकाश-रेखा बना रही हैं।

मैंने उस पर दूर से लिखा था और वह दूरी जमाने और जमीन दोनों की थी। आज उसकी चोटी पर चढ़कर मैं दोनों को लांघ रहा हूँ—जमाने को भी, जमीन को भी।

यह चिग्रांग लुंग चिग्राग्रो का छोटा स्टेशन पीकिंग से करीब ७० मील दूर है। नौ बजे राजधानी से चले थे, एक बजे दीवार के नीचे आ खड़े हुए। दीवार का प्रसिद्ध दरवाजा 'पा ता लिंग' स्टेशन से बस चन्द मिनट की दूरी पर है। दिन का खाना ट्रेन में ही सबने खा लिया था और अब हम बगैर एक मिनट खोए पैदल बढ़ चले।

गिरोह में पैदल चलने में भी बड़ा मजा आता है। बूढ़े और जवान समान चुस्ती से चले। अलीम गोपालन और मैं साथ-साथ चल रहे थे। साथ ही अमृत भी थे। लड़कियाँ हिरनों की तरह उछल रही थीं। पेरिन, सरला, पंकज, श्रीमती चट्टोपाध्याय और श्रीमती मेहता का एक झुंड था, पाकिस्तान के सर सिकन्दर हयात खाँ की कन्या और पुत्रवधू का दूसरा। दल के बाद दल। टूटे परकोटे से हम दीवार की बगल में पहुँचे और चढ़ाई शुरू हो गई।

चोटी तक पहुँचने का हमने इरादा किया था पर वहाँ पहुँचना कुछ आसान न था। फिर भी शुरू की चढ़ाई ऐसी मुश्किल भी न थी। हम ताजे थे, चहल-कदमी करते, उछलते, दौड़ते चढ़ चले। पर जब जैसे चढ़ाई सीधी होती चली वैसे ही वैसे हमारे पैर थकने लगे, हमारी चाल धीमी हो गई। कुछ रुक चले, कुछ धीमे हो चले, कुछ राह में आराम करते चले। एकाएक मैंने महाराज जी, गुजरात के हरिनाथ जी व्यास जो पश्चिमी भारत के अत्यन्त श्रद्धेय कांग्रेस नेता हैं, को दीवार की दूसरी ओर नीचे चट्टानों पर उछलते उतरते देखा।

ऊपर खींच लिया। हम ऊपर चढ़ते गए, धक्के देते और खाते, एक दूसरे को सम्हालते। इस्रायल के वृद्ध और महिला अब बैठ गए। पार लगाना उनके बस का न था। अमरीकी दल, उनके बीच आकर्षक श्रीमती गार्डनर, चढ़ाई चढ़ता रहा।

उन्मुक्त हास्य! कभी न भूलने वाला, बिरादराना! अकृत्रिम मैत्री! थक चला था, पर चोटी पर चढ़कर पहाड़ों की ऊँचाई को नीचा दिखाने का लोभ संवरण न कर सका। हालांकि ऐसा करना महज अब 'फ़ार्म' की बात थी क्योंकि मैं चोटी तक प्राय पहुँच गया था। उमाशंकर शुक्ल ने, जो ऊपर से ही आए थे, ऐसा कहा भी। बड़े प्यारे हैं, यह गुजराती कवि और आलोचक। उनका परिचय पाकर, नागर, तुम प्रसन्न होते, यद्यपि मुझे सन्देह है कि उनमें भी, तुम्हारी तरह, उन भूमध्यसागरतटीय प्राचीन सौदागरों के खून की रवानी है जो पश्चिमी तट पर प्राचीन काल में आ बसे थे। और वे मेरी तरह केवल आलोचक भी नहीं हैं। आलोचक जो चेनिंग पोलक के शब्दों में, सिखाता तो दौड़ना है पर खुद जिसे पैर नहीं होते! उमाशंकर जी कवि भी हैं और ऊँचे सवार थे।

जो उस पहाडी निर्जनता में विशेष भय का सचार करती है। अत्यन्त प्राचीन परम्परा और आज के बीच बनी वह दीवार जमाने की बदलती तस्वीर को जैसे देख रही है। अशोक के शासन-काल के आस पास ही उसे क्रूर सम्राट चिन शिह हुआग ती ने २१४ ई० पू० बनवाया था। दुर्विख्यात सम्राट हुआंग ती ने विद्वानो का दमन कर और उनकी पुस्तकों को जला कर इतिहास में अपना नाम काला किया था। परन्तु महान दीवार का निर्माण उसकी अक्षय कीर्ति का साधक हुआ। चीन का महादेश साधारणत पश्चिम में तिब्बत के ऊचे पर्वतो द्वारा सुरक्षित था, दक्षिण में याग्त्सी द्वारा, पूरब में सागर द्वारा। परन्तु उत्तर अरक्षित था। उस दिशा में चीन साहसिक सामरिको की क्रूरता का शिकार था। चीन के इस खुले द्वार का लाभ उत्तर के उन बबरों ने उठाया जो सहसा देश के समृद्ध मैदानो में उतर आते, उनके नगरो को बर्बाद कर देते, उनके असहाय निवासियो को तलवार के घाट उतार देते। हुआग ती ने, जो अब रेगिस्तान से समुद्र तक का स्वामी था, शत्रुओं के सामने देश की रक्षा के लिये दीवार खड़ी कर देने का संकल्प किया। उसके आदेश से उसके प्रसिद्ध सेनापति मॅग तिएन ने दीवार खड़ी कर दी। दस लाख आदमी लगे। कुछ राज के रूप में, कुछ रक्षकों के रूप में, शेष सामान्य मजदूरों के रूप में। फलत इनसान की ताकत ने दस साल के भीतर वह जादू की दीवार खड़ी कर दी। परन्तु लाखों मजदूर दीवार खड़ी होने के पहले ही उसकी नींव में दफनाए हो गए। उनसे कहीं ज्यादा तादाद में वे थे जो घायल होकर जिन्दगी भर के लिए बेकार हो गए।

गई है। चीन के प्राय सारी उत्तरी सीमा को घेरती हुई वह अटूट रेखा में दूर के पश्चिमी कानसू के रेगिस्तान से पूर्व के प्रशान्त महासागर तक जा पहुँचती है। जितनी सामग्री उसमें लगी है, जानकारों का कहना है, यदि उससे इक्वेटर पर पृथ्वी को भी घेरा जाय तो वह ८ फुट ऊँची ३ फुट मोटी वेष्टन के रूप में समूची पृथ्वी को घेर लेगी!

पहले की बुर्जियों में बराबर फौज रहती थी जो अद्भुत सिग्नल द्वारा बहुत कम समय में, एक बुर्ज से दूसरे बुर्ज को, सैकड़ों मील दूर खबर भेज देती थी और साम्राज्य की विपुल सेना दीवार के नीचे आकर उन बबरों के विरुद्ध सन्नद्ध हो जाती जो रन्ध्र की खोज में बराबर दीवार के एक सिरे से दूसरे तक घूमते रहते थे। नानकाऊ का दर्रा चिरकाल से चीन से दूर मंगोलिया जाने वाले काफलों की राह रहा है। इसी की भाँति और दर्रे भी अन्य दिशाओं में जाते थे जिससे दीवार में राह बनानी पड़ती थी। आज तो कई जगह से तोड़कर रेल और दूसरे यातायात के जरियों के लिये रास्ते बना लिये गए हैं। दीवार हमारे पास करीब २० फुट ऊँची है और उसका परकोटा नीचे २५ फुट, ऊपर १५ फुट चौड़ा है। खतरे की जगहें ठोस बनावट से मजबूत कर दी गई हैं। ऊपर ईंटें लगी हैं और बाहरी ओर दीवार की मजबूती के लिये दोहरा परकोटा दौड़ता है।

हम दौड़ते-कूदते, हाँफते-फिसलते ईंटों और पत्थरों पर चलते, नीचे उतरे। सीढ़ियों से नीचे और नीचे अन्त में प्रारम्भ भूमि, मानो पृथ्वी पर आ लगे हुए।

पीकिंग,
२७-६-५२

प्रिय वात्रे,

रात नम थी। कुछ मेंह भी बरसा था। डरता था कि दिन भी अगर रात की ही तरह भींगा तो बाहर जाने का विचार छोड़ देना पड़ेगा। पर पौ फटते ही डर दूर हो गया। दिन चमक उठा था, सूरज ने दिशाओं में आग लगा दी थी।

बैठक नर-नारियों से भरी थी। होटल के बाहर का मैदान भी। सारी जातियों के लोग, जो चीन के राष्ट्रीय दिवस और शान्ति-सम्मेलन में शामिल होने पीकिंग आए थे, बसों में बैठ रहे थे। बसें अटूट सर्पाकार रेखा में चलीं। नाक से दुम लगी थी, दुम से नाक। लक्ष्य चीनी सम्राटों का ग्रीष्म प्रासाद था।

पीकिंग से करीब २० मील उत्तर-पश्चिम, पश्चिमी पहाड़ियों की आधी राह, प्रकृति के खुले वैभव के बीच स्वर्ग फैला पड़ा है। वह नया ग्रीष्म प्रासाद है। प्रसिद्ध वैदूर्य का सोता वहां से बस एक मील है। उसकी गहराइयों से निर्मल स्फटिक सदृश जल का स्रोत अविरल बहता रहता है। पहाड़ियों के नीचे खुले मैदान में झील बन गई है जिसके चमकते जल के किनारे उसे घेरते हुए-से चीन के सम्राट्-कुलों ने अपने ग्रीष्म प्रासाद खड़े किये हैं।

और युद्धपति आपान से मदे झूमते थे, माननियाँ प्यार और दुश्मनी करती थीं, खोजे मुखबिरी करते थे।

फ्रेंच और ब्रिटिश सेनाओं ने महलों को गोलाबारी से तोड़ दिया। १२ साल तक सम्राट् का दरबार बगैर ग्रीष्म प्रासाद के रहा। रोमैन्टिक विधवा साम्राज्ञी त्जू ह्‌सी इस स्थिति को गवारा न कर सकती थी। प्रमदवन का जादू भुला देना उसके लिये सम्भव न था। उसने पुरान विहार-स्थल को फिर से जगाने के सपने देखे, प्रण किये। चीनी नौसेना बनाने की योजना थी। २,४०,००००० ताएल उसके लिये अलग जमा कर लिये गए थे। साम्राज्ञी ने उस धनराशि को चुरा लिया। उसमें ढाई हजार मील लम्बी रेलवे बन सकती थी, पर तन की भूख उससे लम्बी थी और मन की उससे कहीं लम्बी। १८८८ में वान शाऊ शा। के महल रहने के लिये तैयार हो गए। ६० वर्ष की आयु में उस विलक्षण नारी ने अपने विहारोद्यान में प्रवेश किया। आयु ने व्यंग किया पर तृष्णा विजयिनी हुई।

हम उसी ओर बढ़ते चले जा रहे थे। जैसे ही हम नगर और पास के खेतों से बाहर निकले, दूर की गगन-रेखा पर चमकती टाइलों की छत दिखाई पड़ी। आखिरी मोड़ घूमकर हम ऊँचे लकड़ी के विशाल तोरण के नीचे से निकले। सामने की इमारत ऊँची और आकर्षक थी, विविध डिजाइनों के खचनों से भरी। उसके खानों के आलेख जड़े खम्भों और अजहदों वाली लकड़ी की शहतीरों के रंगों से चमक रहे थे। पुराने दरबारों के चितेरे, बाप्रे, गजब के रंगसाज थे। कलावन्त ने कभी इस मेधा से रंगों को न मिलाया, कहीं इस कुशलता से ब्रुश का फेरा न गया, इतनी विचक्षणता से कहीं जमीन चित्रों से न लिखी गई। नीले, पीले, नीले, सुनहरे और हरे रंग अधिक प्रयुक्त हुए हैं, परन्तु उनकी शोखी बड़ी चतुराई से हल्के रंगों से नरम कर दी गई है, इससे पत्थर जैसे सहसा जीवित हो उठा है। रंग भरी ओरियानिया प्रपात [illegible] लिये चमक रही हैं। उनके ऊपर चमकती पीली खपरैलों की छाजन है।

तोरण की तिहरी बनावट का मस्तक इन्हीं खपरैलों से अत्यन्त भव्य बन गया है।

पीछे यह विस्तृत आंगन है जहां हम घूम रहे हैं, लोग एक-दूसरे को भेंट रहे हैं, मित्र बना रहे हैं। यहां जैसे एक दुनियां उतर पड़ी है। कवि और चितेरे, गायक और स्वरसाधक, लेखक और पत्रकार, राजनीतिज्ञ और राजदूत, डाक्टर और पादरी, नर्तक और अभिनेता, वकील और सौदागर—गोरे, काले, गेहुंए, पीले—मित्र भाव से एक-दूसरे से मिल रहे हैं। शालीन शान्ति-सम्मेलन का निःसन्देह यह शालीन प्रारम्भ है।

वह नाजिम हिक्मत है, विख्यात तुर्की शायर, जिसकी आवाज सालों अंकारा के जेलों की खामोशी भरती रही है। ऊंचा तुर्क अपने काफ़िलों की भीड़ के बीच खम्भे सा खड़ा है। जिस्म से तगड़ा है, पर हाथ में छड़ी लिये चलता है। बालों में जहां-तहां सफेदी है, शायद ६० का हो चुका है। भूरी मूछों में मुस्कान सदा बिखरी रहती है, खुली हंसी द्वारा झेली मुसीबतों पर वह सर्वदा जैसे व्यंग करता रहता है। वह उधर एनीसीमाव है, सोवियत दल का नेता और मास्को के अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशन का प्रधान सम्पादक, वैसा ही ऊंचा। कुछ गम्भीर पर उचित अधिकारियों के प्रति मुस्कराने से चूकता नहीं। और वहां वह नाटा, तगड़ा, मुग्ध सुननेवालों का प्यारा, गायक, तुरसूमजादे है, ताजिक शायर, जो हिन्दुस्तान पर भी लिख चुका है। सिर के बाल निहायत छोटे कटे हैं, भारी मस्तक चौड़े कन्धों पर झूम रहा है। तीनों मुझे सोवियत और भारतीय लेखकों की गोष्ठी में मिले थे।

हाल की कविताओं का संग्रह भेंट किया, अभिराम रुचि से प्रस्तुत जिल्दवाला सुन्दर संग्रह। काश कि मूल स्पेनी के शुद्ध राग में समझ पाता!

हमारे दुभाषिये और गाइड हमें आगे बढ़ने को कहते हैं। हम छोटे-छोटे दलों में आगे बढ़ते हैं। हमारा गाइड प्रो० चाङ है। चाङ प्रोफेसर नहीं है फकत विद्यार्थी है, पर हम उसे उसके रोब के कारण प्रोफेसर ही कहते हैं। उसकी टिप्पणियों में भाषा का राज होता है। व्याख्या करता-करता वह सहसा रुक जाता है, पूछता है, 'अथवा, महानुभाव, आपका मत भिन्न है?' या रुककर कहता है, 'मैं इस पर आपकी राय जानना चाहूँगा।' औरों की ही भांति चाङ भी भाषा का सिपाही है। गाने के लिये कहने पर जरा तकल्लुफ नहीं करता। झट राग अलाप देता है, बगैर गुनगुनाए, कभी दुखभरा राग, कभी भाव-गीत, कभी राष्ट्रीय गान। अतीत के अनेक खंडहरों में वह हमारे साथ रहा है, उसने हमें राह दिखाई है। अद्‌भुत है।

द्वार पर दो विशाल बैठे कांसे के सिंह हैं, धातु की ढलाई के अनोखे चीनी नमूने। फाटक जो कभी सदा बन्द रहते थे, आज अपने कब्जों पर घूमे खुले खड़े हैं। सिंह साम्राज्य-शक्ति के प्रतीक हैं और जहाँ उनके पंजे तले किमखाबी जमीन की गेंद है, वे चक्रवर्ती शक्ति के परिचायक हैं। गेंदें विश्व की गोल काया का ज्ञापन करती हैं।

पहली विशाल इमारत विधवा साम्राज्ञी का दीवाने खास है, ताजपोशी का हाल। इसके पास से होकर हम झील के तट पर चले जाते हैं, चट्टानी टीलों पर जा खड़े होते हैं। कैमरे खटक उठते हैं, तस्वीरें ले ली जाती हैं। गिरोह खिलखिला उठते हैं। खुशी की किलकारियां विषाद की छाया को ढक लेती हैं। विनोद चिन्ता का लोप करता है। आनन्द का स्रोत स्वच्छन्द बह चलता है।

है, हमारी नजर बिखर-बिखर उन पर छा जाती है। जो कुछ प्रकृति का उदार हृदय दे सकता है, जो कुछ मनुष्य की कला और कौशल मूर्त कर सकता है, वह सारा इस स्थल पर एकत्र हो गया है। बग़ीचे और फूल, निकुंज और झुरमुटें, पहाड़ियां और झीलें, द्वीप और पुल, मन्दिर और पगोडे, अपने सम्पूर्ण प्राकृतिक और मानवकल्पित वैभव के साथ एकत्र उठ गये हैं। इनको जगह-जगह बरामदे और आंगन एक-दूसरे से अलग करते हैं, ग्रीष्मप्रासाद की सुषमा बढ़ाते हैं। पहाड़ियों में सदियों का ऐश्वर्य भरा पड़ा है। उनमें वह सब कुछ है जो चीन का वैभव और कला दे सकी है—ध्वजा-चित्रण पोर्स्लेन और वैदूर्य के अनन्त बर्तन, हाथी दांत और बेशकीमती पत्थर जड़े काम।

पहाड़ियों के पार्श्व और चोटी पर अनेक इमारतें खड़ी हैं, मन्दिर और पगोडे, रंगमंच और दावतों के हाल। सबसे ऊंचा पोर्स्लेन पगोडा है। उसका मस्तक हरी-पीली चमकती खपड़ैलों से ढका है और इमारत वैदूर्य-सोते की पच्छिमी धूप से नहाती ढाल पर खड़ी है। उसके अठ-पहले चेहरों में सैकड़ों खाने कटे हैं, जिनमें बैठे बुद्ध की मूर्तियां लगी हैं। कुन मिंग हू झील की परिधि चार मील से अधिक है। उसके समूचे उत्तरी तट को घेरती सुन्दर रेलिंग है, संगमरमर की बनी, जो दृश्य को दुगनी सुन्दर बना देती है।

ग्रीष्म प्रासाद की शान्ति वाटिका—प्रसिद्ध यी हो युआन—वहां की सुन्दरतम कृति है। पहले-पहल वह १७५० में बनी थी, १८६० में उसे बर्बर यूरोपीय गोलाबारी ने तोड़ दिया था। विधवा साम्राज्ञी ने उसको फिर से बनवाकर उसका नया नामकरण किया।

बिछाए। पीकिंग में रहते शायद अन्तर की चेतना उसके आनन्द में बाधा डालती, शायद उसके आपानो की शृंखला को तोड देती। परन्तु यहाँ वह अपनी चुराई करोडो की सम्पदा द्वारा स्थल को निःसंकोच सजा सकती थी। उसका आवास, झील से झाकता, विशेष सोपानमार्गों से सज्जित है। उसकी वेदिकाएँ समुद्री फेन के आकार की बनी हैं, कुडली भरते अजहदो की शक्लो में ऐंठ दी गई हैं। अन्य चीनी महलो की ही भाँति साम्राज्ञी के महल भी बराडो और विमानो की अपनी परम्परा लिये हुए हैं, जो फँचे आँगनो से जुडे हैं। गर्मियो में यह आगन फूले, पेडो और झाडियो, उनकी लदी कलियो की गमक से भर जाते हैं। आगनो के ऊपर रगबिरगी चटाइया बिछी हैं, पेडो और झाडियो के ऊपर, जिससे आगन गर्मियों में सुगन्ध भरे कमरो-से हो जाते हैं। साम्राज्ञी के आवास से एक छाई-ढकी राह निकलती है, जैसे चलता हुआ बागीचा ऊपर लताओ के सौरभ से लदा, ग्रीष्म-प्रासाद के दृश्यो से चित्रित सैकडो अलकरण चेहरे और बगल से उठाए। यह राह सग मरमर की वेदिकाओ के साथ-साथ झील के उत्तरी तट पर लगातार चली गई है। वितानो और पुलो को पीछे छोडती, तोरणो और महलो से गुजरती, यह शीतल राह सगमरमर की ऊँची नौका तक चली जाती है। इसके एक सिरे से दूसरे सिरे तक दोनो ओर लगातार गरो की कतार हैं, जिनके बीच-बीच से सगमरमर की राहे निकल गई है।

इमारतो का दौरा कर हम 'लच' के लिये बैठे। ऐसा लच कभी न देखा था। उस भोज ने रोमन दावतो की याद दिला दी। मांसाहारी जानवर को हटाकर घास पर गुजारा किया। लच में दो घंटे से ऊपर लग गए और जब तक हम बगीचे की उस अद्भुत कला [illegible] झील के तट पर पहुँचे, छाया लम्बी हो चुकी थी, सूरज पहाडियो को चूम चला था।

हम में से कुछ भारतीय दूतावास चले गये थे। [illegible] विहार के लिये नावो में जा बैठे। अनेक [illegible]

को प्रतिबिम्बित करती जल की उस सतह पर चुपचाप तैर रही थीं। पश्चिमी क्षितिज में आग लगी थी, पूर्वी क्षितिज पर जैसे कोहरा छाया था। सूरज सहसा डूब गया, सोने की सिकताएँ जो पानी की लहरियों पर नाच रही थीं, एकाएक तल में समा गईं। दूर आसमान और जमीन के बीच उस स्वच्छतम वातावरण में काली-नीली धारियों की एक राह बन गई थी। उसी कांपती राह से अर्धचन्द्र की धूमिल चांदनी उतर-उतर जलराशि पर पसर रही थी।

नावें भरी हैं। यूरोपीय और अमरीकी, ईरानी, ट्यूनीशी और तुर्क तालियाँ बजा रहे हैं, गा रहे हैं। हम भी बातें कर रहे हैं, हँस रहे हैं, मजेदार कहानियां कह रहे हैं। बीनू का विनोद जाग्रत है, चक्रेश गुन-गुना रही है, रोहिणी हलके अलाप रही है। पुल के नीचे से निकलकर झील पार हम नाव से उतर पड़ते हैं।

समूचे दिन की सैर के बाद हम होटल लौटे हैं। ओपेरा होने वाला है, पर दिन की थकान के बाद ओपेरा जाने की तबियत नहीं होती। लिखने को जी चाहता है। लिखने बैठ जाता हूँ।

आप सुखी होंगे। हमारा शान्ति-सम्मेलन दूसरी अक्तूबर तक स्थगित हो गया है। इससे एक हफ्ता और चीन देखने का मौका मिल जायगा।

स्नेह।

आपका,
भगवत शरण

पीकिंग

विनोद जी,   ३०-९-५२

इस यात्रा में आपकी याद अनेक वार आई। चाहा कि लिखूँ पर समय न मिला। आज आधी रात गये आपको लिखने बैठा। अभी नये चीन के स्रष्टा माओ की दावत से लौटा हूँ। रात खासी जा चुकी है, पर सोचा, खत लिख ही डालूँ, वरना कल पहली हो जायेगी—अक्तूबर की पहली, चीनी नव राष्ट्र की तीसरी जयन्ती। और जैसी तैयारियाँ देखता आ रहा हूँ, उससे जाहिर है कि कल का दिन कुछ आसान न होगा। कम-से-कम पत्र लिख सकने की गुंजायश कल नहीं दीखती। इससे आज, इस गहरी रात की तनहाई में—

प्रतीभोज यह उसी राष्ट्रीय दिवस के उपलक्ष्य में था। भोज अनेक देखे हैं, अनेक अन्तर्राष्ट्रीय दावतों में शामिल हो चुका हूँ—गोल अम्बर का चक्कर काटा है, पृथ्वी की परिधि नापी है, कुछ अजब न था कि देश-देश की दावतों का नजारा लूँ—पर अभी अभी जहाँ से लौटा हूँ, वह अपना राज रखती है, स्मृति-पटल से मिट न सकेगी।

कर्मठ राजनीतिज्ञ थे, ईमान के नाम पर जूझने वाले क्रान्तिकारी—जिस्मलागर, पर जिनकी तनहा आवाज जेलों की तनहाइयों में सालों गूंजती रही है, छत को छेद दिवारें लांघ आततायियों के परकोटों को हिलाती रही है, यद्यपि जिनका शुमार, जिनकी कुर्बानियों का तख्मीना, सभ्य स्टेट्समैन नहीं करते (भुक्तभोगी हो, जानते हो, कहना न होगा)। और ये मानवता के प्रेमी, आदमी की पेशानी पर एक बल जिनके दिल में दरारें डाल दे, धर्म के अकिंचन सेवक, बुद्ध-ईसा-गांधी के अनुयायी, शान्ति के उपासक, राजदूत, सैनिक, किसान, मजदूर और जाने कौन-कौन, पर सभी जंगबाजी के दुश्मन।

अंग्रेज, फ्रांसीसी, जर्मन, इटालियन, रूसी, पोल, चेक, हंगेरियन, रूमानियन, बुल्गर, ग्रीक, तुर्क, मिस्री, ट्युनीशी, यहूदी, ईरानी, पाकिस्तानी, हिंदुस्तानी, सिंहली, इंडोनेशी, फिलिपीनो, अफ्रीकी, आस्ट्रेलियन, न्यूजीलैंडर, बर्मी, लाओ, वियत्नामी, हिन्द-चीनी, स्यामी, तिब्बती, मंगोल, जापानी, चीनी, कोरियाई, कनैडियन, अमरीकी, लातिनी अमरीकी—देश-देश की जनता के रहनुमा, जाति-जाति के पेशवा, कौम-कौम के रहबर।

जाय। इतना बडा हाल शायद ही कहीं देखा हो, याद नहीं। तीन सौ साल पुराना, मचुओ का बनाया। दर्जनो मोटे सुन्दर खभे छत को सिर से उठाये हुए। खभो का चीन में एक अलग राज्य है। घरो में, सार्वजनिक भवनो में, मन्दिरो में अधिकतर लकडी के खभे, कहीं पेडो के साबुत तनो से बने, कहीं तनो की कटी गज-गज भर दो-दो गज की गोलाइयो से बने, पर बाहरी रग से गजब के सुन्दर और रग लाल, चीनियो का अपना, जिन्दगी का रग। जमीन लाल, छत लाल, खभे लाल, दीवारें लाल और अब सरकार लाल।

घुसते ही बन्द बरामदे, वस्तुत लम्बे कमरे से होकर गुजरना पडा। वातावरण फूलो की गमक से महँ-महँ हो रहा था। देखा हरसिगार के पेड-सी, पर हरसिगार नहीं, एक झाड खडी है, फूलो से लदी-झुकी, अन्दर की हवा को अपने पराग से बसती। सुगन्ध मधुर थी, बडी भीनी, इतनी तेज नहीं, फिर भी इतनी कि दूर तक कमरे का कोना कोना गमक रहा था। शायद वह पेड—नहीं जानता कौन-सा था, पूछा भी नहीं—चीन का अपना है, हवा-पानी-धूप से अलग रह कर भी जीने और फूलने वाला, या सम्भव है साधारण पेड को ही साधकर चीनियो ने वसा बना लिया हो, आखिर इस तरह के हुनर में चीनी-जापानी माहिर है।

हाल के भीतरी द्वार पर शिक्षा-मन्त्री कुओ मो-रो अतिथियो का स्वागत कर रहे थे। पौने आठ बजने ही वाले थे। भारतीय डेलिगेशन की बसें शायद अन्त में पहुँचीं, क्योकि हाल लोगो से खचाखच भरा था। मेजें आहार की वस्तुओ—लेह्य, चोष्य, पेय, खाद्यादि—से भरी थीं। अपनी-अपनी कतार में, अपनी-अपनी निर्दिष्ट मेजो के सामने। हम भी अपनी लम्बी मेज के सामने अपनी कतार में जा खडे हुए। मै भारतीय कतार के सिरे पर था।

कहा न कि प्रीतिभोज 'बुफे' किस्म का था, इससे लोग खड़े थे। उस प्रशान्त हाल को अपनी कतारों से भर रहे थे। सभी सब को देख रहे थे। काले, सफेद, पीले, गेहुएँ सभी। सभी के लिए समारोह असाधारण था। जहाँ नजरें मिलतीं, चेहरे खिल उठते, खिले चेहरों पर मुस्कराहट दौड़ जाती। इन्सान अपनी मूल विरासत की विपुल धारा में अनायास बह रहा था। उस समारोह में वे भी थे जो सदियों से दूसरों की तृष्णा के शिकार हो रहे थे, जो औरों के साम्राज्यवाद की बुनियाद थे, जो अद्यावधि अनजानी कुर्बानियाँ किये जा रहे थे, और वे दूसरे भी जिनके देशवासी जगबाजी में माहिर थे, दूसरों को कुचल डालने का ही जिन्होंने व्रत लिया था, साम्राज्यवाद के बल्ले गाड़ना ही जिनके जीवन का इष्ट था। पर दोनों ही समान मानवता के पोषक थे। दोनों ही इन्सानी-विरासत को बचा लेने के लिए कन्धे-से-कन्धा मिलाये इस साँझ खड़े थे, उस स्वर्गीय-शान्ति के हाल में।

सहसा बैंड बज उठा और हल्की फुसफुसी आवाज, जो हाल में गूंज रही थी, बन्द हो गई। घड़ी देखी, आठ बजने ही वाले थे, बस दो मिनट और बाकी थे। ठीक आठ बजे बैंड क्षण भर बन्द हुआ और एकाएक फिर बज उठा। सारी आँखें सहसा पूरब के बरामदे के शिरोद्वार पर जा लगीं। मनवता का लाडला, अभिनव आशा माओ हाल में दाखिल हुआ। हाल, माओ जिन्दाबाद' की आवाज से, गूंज उठा। सहस्रों कण्ठों से उठी आवाज बारबार उस शान्ति-सकल्पमना जनसस्त भवन में प्रतिध्वनित होने लगी।

फंका।

विनोद जी, इस सरल नर का दर्शन इतना अकृत्रिम, इतना सहज था कि अकिंचन से अकिंचन प्राणी भी उसके पास अनायास चला जाय, उससे खौफ न खाय। 'महाभूतसमाधियों' से प्रकृति ने उसकी काया सिरजी है और जिस सांचे से उसे ढाला निश्चय ही उसे ढालकर तोड़ दिया, वरना उसके-से और होते। जितना ही उसे देखता उतना ही उसके किए कर्मों के पन्ने आंखों के सामने उघड़ते आते। जापानियों से लोहा, क्वोमिन्तांग से संघर्ष, हजारों मील का वह उत्तर से दक्खिन, पच्छिम से पूरब तक का विजय-मार्च, जनता का रूप-परिवर्तन, जमीन का नया विधान, अर्थशास्त्र का नया निरूपण, क्रूर नदियों का नियन्त्रण, क्रूरतर राष्ट्रों के षड्यन्त्र का सामना, चीन में नई दुनिया की सृष्टि, कोरिया का मोर्चा और सबसे बढ़कर संसार का शान्ति का मोर्चा।

सभी उचक रहे थे, सभी अपने पंजों पर थे, सारे नर नारी, उसे देखने के लिए। दूज के चांद को जैसे जनता आंखों से पीती है, राष्ट्रों के वे प्रतिनिधि उसीप्रकार माओ की स्निग्ध आभा का पान कर रहे थे। अनेक लोग एक-एक कर धीरे से ऊंचे बरामदे की ओर चले जा रहे थे, जहां से माओ का दर्शन सहज था। मैं भी वह लोभ संवरण न कर सका। धीरे से गया, कुछ मिनट खड़े होकर वहां उसे निहारता रहा, फिर अपनी जगह लौट कर खड़ा हो गया।

इस बीच माओ अतिथियों के स्वागत में चलता रहा। [illegible] भाषण था। हम लोग, जो अपने देश में लम्बे भाषणों के आदी हो गये हैं, इसी कारण उन भाषणों का असर हमारे ऊपर नहीं पड़ता, उसे संक्षिप्त ही कहेंगे। पर उस भाषण में अपनापन था। और [illegible] शान्ति प्रयास की चर्चा थी। मानव-जाति के शान्ति-प्रयास की, मानव-जाति [illegible] परस्पर सद्भाव और स्नेह की सद्भावना [illegible] गई थी।

वाला गिलास उठाया, हाल में गिलासो की परस्पर टनटनाहट से ध्वनि की मधुर तरग उठी। मै तो पीता नहीं और वहा अनेक थे जो नहीं पीते थे–हमारे पाकिस्तानी प्रतिनिधि परहेज कर रहे थे, और हमने अपने सन्तरे के रस भरे गिलासो को ही परस्पर टकरा कर अपने उत्साह और स्नेह का प्रदर्शन किया।

इतने जन-परिवार मे मिल सकना असम्भव था। इससे प्रतिनिधि-मण्डलो के प्रधानो से माओ ने हाथ मिलाया, उनके प्रति अपनी शुभ-कामना प्रकाशित की। एक-एक कर वे उससे हाथ मिलाते निकलते गये। लोग उचक-उचक कर देखते रहे। बीच-बीच में 'माओ जिन्दाबाद।' 'शान्ति जिन्दाबाद!' के नारे भी बुलन्द होते रहे।

थोडी देर में, नौ-सवा नौ बजते-बजते सब का अभिवादन कर माओ चला गया। आज जाना, कौन वह शक्ति है, कैसा आकर्षण, जिसका नाम मात्र, याद मात्र चीनियो में अमित उत्साह भर देता है। माओ चला गया, पर देर तक उसके प्रभाव की स्निग्ध-धारा हमारी कतारो के बीच बहती रही। चीन के प्रधान मन्त्री चाउ-एन-लाइ और सेनापति जू-देह हमारे बीच घूम-घूम हमसे स्मित हास्य द्वारा बोलते रहे। उनके बीच सुनयात सेन की पत्नी सुग-चिग-लिग का निर्मल चेहरा जब-तब झलक जाता और जब-तब चीनी शान्ति-समिति के प्रधान कुओ-मो-रो का।

मांस ही परसा जा सकता है, और उस दिशा में सन्देहवश उन्हें संकोच हो सकता है। मेरे बायें बाजू कुछ दूर से ही निरामिष भोजन चुन दिया गया था। पर सारे खाद्यों का दर्शन मांसवत् ही था। गोश्त की शक्ल में ही सभी साग बनाये गये थे। सामने जो लाल कतरे रखे थे, कोई ऐसा नहीं, जो धोखे से उन्हें गोमांस न समझ ले। पर वे सारी चीजें वस्तुतः सेम के बीज, पालक, मशरूम आदि की बनी थीं।

देर रात गये भोज समाप्त हुआ। होटल लौटा और लिखने बैठ गया। बार-बार उस महामना मानव की याद आ रही है, जिसने उस देश की अफीमची, काहिल, चारों ओर से पिटी जनता में नयी जान डाल दी है। उसके पास लफ्फाजी कम है, कर्मठता अधिक है। उसकी आवाज कौम की आवाज है, क्योंकि वह कौम की नींद सोता, कौम की नींद जागता है।

बन्द करता हूं अब यह खत, विनोद जी, वरना जवान रात और सोये सरकी जा रही है। सरक जायेगी। खिड़की पर बैठा हूं, जिसकी प्रधान सड़क पर नहीं, पीछे खुलती है, और आसमान नीचे की लाल-नीली बत्तियों से घुटा-सा तारों की आंख झांक रहा है। अभी शायद आप यहां शाम होगी, रेशमी धुंधलका छाया होगा। और आप दिन-रात की उस सन्धि पर आसमान जमीन के कुलाबे मिला रहे होंगे। मुबारक संघर्ष आपको! यकीन रहे, रात का अंधेरा टूटेगा, पौ फटेगी।

भागवत शरण

श्री बैजनाथसिंह 'विनोद',
५०।१६० कला, बनारस।

पिकिंग,

१-१०-५२

प्रियवर,

चीन आते ही आपको लिखना चाहा था, मुनासिब भी था क्योंकि स्वदेश छोड़ते समय आपका ही भारतीय घर था, जहाँ से मैंने विदा ली। पर विदेश की व्यस्तता, फिर विशेष अवसर की, जिससे आज से पहले न लिख सका। ऐसा भी नहीं कि लिखता नहीं रहा हूँ। घर लिखा है, चित्रा-पद्मा को लिखा है, मित्रों को लिखा है, पर सही, आपको लिखना सबको लिखना-सा तो नहीं था।

इस प्रकट अनौचित्य का एक कारण और था। वह उस विशेष अवसर की प्रतीक्षा, जिस सम्बन्ध में आपको लिख सकूँ। वह अवसर अब मिला। आज जो देखा है उसका बयान क्या करूँ, कहाँ तक करूँ, नहीं समझ पा रहा हूँ। विशेषकर इसलिए कि आपका वातावरण, मुझे डर है, कुछ ऐसा है कि साधारणतः जो बात लिखने जा रहा हूँ, उसका वहाँ विश्वास नहीं किया जाता। इधर 'नया-समाज' का, जिसके प्रियपात्र था (जिसके प्रियपात्र लेखकों में इधर सालों से माना जाता रहा हूँ, स्वयं आप जिसके प्रतिष्ठाताओं में हैं) रुख, विशेषकर उसके सम्पादकीय नोटों का जो अत्यन्त अनुदार रहा है,

मांस ही परसा जा सकता है, और उस दिशा में सन्देहवश उन्हें सकोच हो सकता है। मेरे बायें बाजू कुछ दूर से ही निरामिष भोजन चुन लिया गया था। पर सारे खाद्यों का दर्शन मासवत् ही था। गोश्त की शक्ल में ही सभी साग बनाये गये थे। सामने जो लाल कतरे रखे थे, कोई ऐसा नहीं, जो धोखे से उन्हे गोमास न समझ ले। पर वे सारी चीजें वस्तुत सेम के बीज, पालक, मशरुम आदि की बनी थीं।

देर रात गये भोज समाप्त हुआ। होटल लौटा और लिखने बैठ गया। बार-बार उस महामना मानव की याद आ रही है, जिसने उस देश की अफीमची, काहिल, चारो ओर से पिटी जनता में नयी जान डाल दी है। उसके पास लफ्फाजी कम है, कर्मठता अधिक है। उसकी आवाज कौम की आवाज है, क्योकि वह कौम की नींद सोता, कौम की नींद जागता है।

बन्द करता हूँ अब यह खत, विनोद जी, वरना जवान रात अगर सोये सरकी जा रही है। सरक जायेगी। खिडकी पर बैठा हूँ, खिड़की प्रधान सडक पर नहीं, पीछे खुलती है, और आसमान नीचे की लाल-लाल बत्तियो से घुटा-सा तारो की आंख झाक रहा है। अभी शायद अपने यहा शाम होगी, रेशमी धुधलका छाया होगा। और आप दिन-रात की उस सन्धि पर आसमान जमीन के कुलावे मिला रहे होंगे। मुबारक सघर्ष आपको! यकीन रहे, रात का अधेरा छॅटेगा, पौ फटेगी।

भगवत शरण

श्री बैजनाथसिंह 'विनोद',
५०।१६० कला, बनारस।

पिकिंग,

१-१०-५२

प्रियवर,

चीन आते ही आपको लिखना चाहा था, मुनासिब भी था क्योंकि स्वदेश छोड़ते समय आपका ही भारतीय घर था, जहाँ से मैंने विदा ली। पर विदेश की व्यस्तता, फिर विशेष अवसर की, जिससे आज से पहले न लिख सका। ऐसा भी नहीं कि लिखता नहीं रहा हूँ। घर लिखा है, चित्रा-पद्मा को लिखा है, मित्रो को लिखा है, पर सही, आपको लिखना सबको लिखना-सा तो नहीं था।

इस प्रकट अनौचित्य का एक कारण और था। वह उस विशेष अवसर की प्रतीक्षा, जिस सम्बन्ध में आपको लिख सकूँ। वह अवसर अब मिला। आज जो देखा है उसका बयान क्या करूँ, कहाँ तक करूँ, नही समझ पा रहा हूँ। विशेषकर इसलिए कि आपका वातावरण, मुझे डर है, कुछ ऐसा है कि साधारणत जो बात लिखने जा रहा हूँ, उसका वहा विश्वास नही किया जाता। इधर 'नया-समाज' का, जिसके प्रियपात्र का (जिसके प्रियपात्र लेखको मे इधर सालो से माना जाता रहा हूँ, स्वय आप जिसके प्रतिष्ठाताओ मे है) रुख, विशेषकर उसके सम्पादकीय नोटो का जो अत्यन्त अनुदार रहा है,

न था। फिर आपकी असाधारण उदारता, उचित को साहसपूर्वक कहने की प्रवृत्ति ने मुझे बार-बार खींचा, इसलिये भी कि यदि आपका वातावरण—आप नहीं, वातावरण—चीनविरोधी हो तो इस पत्र का लक्ष्य वस्तुत वही होना चाहिये। अत यह पत्र।

आरम्भ में ही सावधान किये देता हूँ, पत्र लम्बा होगा, क्योंकि उसकी सामग्री प्रभूत है। सामग्री की अनवरत इकाइयाँ भी, उसका अनन्यत—एकत प्रवाह भी, विविधता भी, और इनसे ऊपर उसकी परिधि का विस्तार, इससे भी ऊपर उसकी हमारे अंतरग की गहराइयों में व्यापकता। जो कह सकूँगा वह उसकी सूची मात्र होगी, आभास मात्र, जो देखा है। आप जानते हैं, दर्शन और व्यजना में गुणत अन्तर है। उनके अपाट्य अन्तर को गोस्वामी जी ने जिस मेधा से व्यक्त किया है वह अभिव्यजना की इन्सानी विरासत है—गिरा अनयन, नयन बिनु बानी—काश कि आँखों को जबान होती, जबान को आँखें होतीं।

जो देखा उसका विचिन्तित घुटा विवरण नहीं दे सकूँगा, नहीं देना चाहूंगा। क्यों, यह एक अंग्रेजी परम्परा द्वारा व्यक्त करना चाहता हूँ। 'डाइजेस्टेड' या 'पचाया हुआ' विवरण अनेक बार प्रकृत सत्य को उगाल कर विकृत कर देता है, बदल देता है (क्योंकि पाचक दोनों के बीच आ जाता है) क्योंकि 'डाइजेश्चन'(पाचन) और 'कुकिंग' (पकाने) में अधिक अन्तर नहीं होता। इस कारण डाइजेस्टेड विवरण न देकर थोड़ी 'रिपोर्टिंग' मात्र करूँगा, जिससे तथ्य और आपके बीच में न आ जाऊँ। वैसे तो मेरे विचारों का आपके विचारों से विरोध होते हुए भी आप मुझे सच बोलने का श्रेय साधारणत देते ही हैं, जो मुझ जैसे कहने वाले के लिये बड़े भाग्य की बात है।

वह यद्यपि अमर सम्पदा वाला है, बासी न हो जाये इससे लिखने बैठ गया। अभी, चार बजे हो।

सुबह देर से उठा था, इसलिये कि उस पिछली रात देर से सोया था, पिछली रात की दावत में शरीक होने की वजह, देर गई रात तक वतन के प्यारो को खत लिखते रहने की वजह। और स्नानादि से निवृत होते आठ-साढ़े आठ बज गये थे। साढ़े नौ बजे चीनी राष्ट्रीय दिवस के समारोह में शामिल होना था। आठ बजे ही उन पत्रों पर हस्ताक्षर करने पड़े जो भारतीय प्रतिनिधियो की ओर से उस सुअवसर की बधाई में मूल हिन्दी में, अग्रेजी अनुवाद के साथ, राष्ट्रपति माओ से-तु ग, प्रधान मन्त्री, और शान्ति-समिति के प्रधान को भेजे गये।

सुबह सुहावनी थी। हल्के कुहरे की झीनी चादर छेद कर नये सूरज ने जमीन को हजार हाथो भेंटा, इन्सान की दबी मुरादें जसे सहसा बर आईं। मौसम की मायूसी और मन की मायूसी में कुछ खासी निस्बत है, यद्यपि सदा मौसम की मायूसी मन की मायूसी का कारण नही होती। पर मौसम का साया बेशक मन के शीशे पर पड़ता ही है। और हल्की धूप का जो असर कुहरा ढकी जमीन पर होता है, मुस्कराहट का वही मन पर होता है। सूरज झाका, जमीन इतराई, इन्सान मुस्कराया, मायूसी फटी।

चीनी चटख लाल रग के साथ हरा का इस्तमाल करते ह, पर हरा लाल को नहीं दबा पाता, मुतलक नहीं, जैसे मौत जिन्दगी को नहीं दबा पाती, उसके हजार खूनी पजो-हरबों के बावजूद।

उसी लाल समां के बीच हम 'शान्ति' के उस द्वार के सामने जा खडे हुए। सारे देशो के प्रतिनिधि मिले-जुले खडे थे। पक्के वितान-मडित द्वार के नीचे, सामने दोनो ओर दूर तक उतरती चली गई लाल सीढ़िया (सोपान-मार्ग) थीं। शान्ति-सम्मेलन के ३७ राष्ट्रो के प्रतिनिधि-दर्शको के साथ इस राष्ट्रीय समारोह में भाग लेने पूरब-पच्छिम के स्वतत्र राष्ट्रो के अनेक प्रतिनिधि भी वहा खडे थे। चीनी जन-राष्ट्र की यह तीसरी जयन्ती थी। दिलो में न समा सकने वाला उल्लास हवा में भर रहा था। हमदर्दी, सेकसरिया जी, बडी चीज है, आसमान से ऊंची, आसमान को भर देने वाली। मुस्कराहट सक्रामक होती है, फलती चादनी की तरह चेहरे-चेहरे पर छिटक जाती है। और मुस्कराहट इन्सानियत की बुनियाद हमदर्दी का नूर है, उसका प्रतीक जयन्ती हमारी न थी, उन किसी की न थी, जो दूर दराज से आये थे, पर वह क्या था जो हमारे भीतर भी उछला पडता था, उनके भीतर भी जो चीन के न थे? क्या मुझे कहना होगा! कह सकूंगा?

गोरे-काले, पीले-गेहुए लोग मिले-जुले खडे थे। जब कभी नजरें मिलतीं, प्यार की मस्कराहट चेहरो पर दौड जाती। चेहरा पर जिन्होंने आज से पहले एक-दूसरे को कभी न देखा था, जो आज के बाद एक-दूसरे को कभी न देखेंगे। पर मानवता की वह एकजाई बाप बिना विरासत, हमदर्दी जो कभी सिखाई नहीं जाती, हमें पुलकित कर रही थी। लोग हुलस रहे थे।

थी, उसके दोनो बाजू पंदलो की अचल कतारें।

ठीक दस बजे दगती तोपों की आवाज़ जब कानो को बहरा करने लगी, चीनी जनतन्त्र का अभिराम जादूगर द्वार पर आ खड़ा हुआ। लाखो आंखें भौरो की कतार-सी घूमती उधर जा लगीं। सरकारी कतार के बीच माओ खड़ा था, वह अकिंचन वीरवर, जो जब चीन का एक कोना पकड़ले तो सारा चीनी ससार एक साथ उठ जाय।

राष्ट्रपति का अभिवादन आरम्भ हुआ। सेनापति ने 'दिन का आदेश' प्रसारित किया। स्वय वह खुली जीप पर खड़ा सेना के प्रतिनिधि का सैल्यूट लेता पच्छिम से पूरब निकल गया, फिर लौटकर उसने माओ का अभिवादन किया। फिर तो एक के बाद एक सेनायें मार्च करतीं, राष्ट्रपति का अभिवादन करतीं निकल गईं।

गूज़-स्टेपिंग करते हुए पहले पदाति निकल गये, उसके पीछे मोटर-सेना, फिर घुड़सवार। नन्हें-नन्हें घोड़े, गधो की शक्ल के, उन पर नाटे-नाटे चीनी सवार। देखते ही हँसी आ जाय। हँसी कुछ लोगो को आ ही गई। मेरे पास ही एक यूरोपीय सज्जन खड़े थे। वे मुस्कराये। मेरी मुद्रा शायद गभीर बनी रही। उन्होने कुछ स्वय झेंपते हुए पूछा—'देखा ?' मैंने कहा—'देखा, जिन्होंने कभी सारा मध्य एशिया अपने इन्ही घोड़ा की टापो के नीचे ले लिया था। इन्होने ही एक बार एशिया लाघ डैन्यूब की राह वियना का द्वार खटखटाया था, पवित्र रोमन सम्राट् को उसी के महलो में बन्दी कर लिया था, और इन्हीं की सेना ने चगेज़ के इशारे पर उस सिन्धु नद को पार कर लिया था जिसके किनारे खड़े हो सिकन्दर ने कभी सात धार आसू रोये थे।' यूरोपीय सज्जन कुछ सहम गये।

थी। जो नजर उठाई तो देखा कि मन की-सी गति से जेट प्लेन (बमवाज) पूरब से पच्छिम की ओर अपने पख पीछे किये उडे जा रहे हैं। त्रिकोण सी बनती एक के बाद एफ ४२ टुकडियाँ देखते ही देखते ऊपर से निकल गईं। फिर ४२, और फिर। अभी उनकी कर्णभेदी गूज कानो में भरी ही थी कि सामने की बैंड सेना के नगाडे बज उठे। और धीरे-धीरे वह अपनी दाहिनी ओर बढती हुई सहसा घूमकर क्षण भर को सामने के राजपथ पर आ खडी हुई। फिर बैंड बजाती, मार्च करती आगे निकल गई।

इससे कुछ राहत मिली। राहत, इसलिये, मेरे मित्र, कि मैं काफी बुजदिल हूँ। किसी को हाथ में ब्लेड लिये देखता हूँ, तो घबडाहट होती है। लगता है कहीं इधर-उधर न रख दे, किसी के लग न जाय। और यह भयकर खूनी सेना का सिलसिला देखा, तो जैसे सिर चकरा गया। सेनाओ की मार से ससार की जनता कितनी व्याकुल है, यह आपसे कहना न होगा। इसी से इन प्रदर्शनो से मुझे खासी अरुचि है। मै अपने देश में भी इस प्रकार के प्रदर्शनो से अलग रहा हूँ। यद्यपि यह जानता हूँ कि अनेक बार इन सेनाओ की आवश्यकता होती है और अवसर में हाथ पर हाथ धरे कायर बने बैठे रहने से बेहतर इनसे काम लेना है। इतिहास की बात आपको याद होगी कि अनेक बार शान्ति के कायल होते भी हमने अपनी आजादी की रक्षा के लिये इच-इच पर हमलावर की राह रोकी है। चप्पे-चप्पे जमीन पर कठा, मालवा, सिंधिया ने फसल काटने की हँसिया फेंक हाथों में तलवार ले कभी सिकन्दर की राह रोकी थी। इन्हीं चीनी सेनाओ को ससार के सबसे भयानक आततायी राष्ट्र को कोरिया के मैदानों में लोहे के चने चबवाते अभी हाल में देखा है।

खासकर जब सामने से लड़कियों की एथलेटिक सेना निकली तो जलते हृदसे पर जैसे शीतल वायु का सचार हो गया। सेना मात्र लड़कियो की थी। बगुले के पख-सी धवल कमीज़ और जाँघिए में कसा शरीर नारीत्व को एक नया लेबास दे रहा था। नारी को अनेक रूपो में, वेषभूषा के अनेक उपकरणो में सजा मैंने देखा था पर इस सादे लेबास में वह इतनी सुन्दर दीख सकती है, इसकी कल्पना भी न की थी।

अपने देश में विशेषत, यद्यपि अन्यत्र भी कुछ कम नहीं, नारी तमाशे की चीज बन गई है। या तो हम उसकी अत्यधिक पूजा करते हैं या सवथा उपेक्षा। वस्तुत नाम की पूजा उपेक्षा का दूसरा रूप है। नारी को सर्वथा एक दूसरे क्षेत्र में परिमित कर देना उसकी सत्ता का गला घोट देना है। अपने यहाँ अधिकतर यही हुआ है। आश्चर्य कि इस धमप्राण देश में, इस तथाकथित आचार सज्ञक जीवन में, वस्तुत नारी के प्रति अपना स्नेह कितना घिनौना है, कहना न होगा। हमने सदियो से उसे केवल अपने भोग की वस्तु बना लिया है। उसके बाहर यदि उसका कोई विस्तार है, तो घर के नौकर-दासी के रूप में ही।

वरन सदियो हमने अपने साहित्य में जो उसका प्रतिबिंब दिया है, वह कितना घिनौना है यह आपसे अनजाना नहीं है। ससार के किसी साहित्य में, किसी भाषा में नारी को कामरूपिणी सज्ञा नहीं मिली। उसके 'कामिनी', 'रमणी', 'प्रमदा' आदि नाम हमारी इसी घिनौनी प्रवृत्ति के सूचक हैं। हमारा सारा रीति-साहित्य इसी विचारधारा द्वारा लाछित है। आज भी हमारे साहित्य में—उपन्यासो, काव्यों में—एक-मात्र इसी रूप-रस का प्राधान्य है और हम जो इस बात पर ज़ोर देना चाहते हैं कि

नारी को नायिका-बोध से अलग जैसे हम सोच ही नहीं सकते। उस नायिका, कायिक स्तर से दूर लोहे के घन से सँवारे, साँचे में ढले सुघड़ शालीन चीनी नारी के इस एथलेटिक सौन्दर्य को जो हमने देखा, तो आँखें खुल गईं। निहारता रहा। चण्डी का काल्पनिक रूप शरीरी बन गया था। किसकी हिम्मत है, जो इस स्वस्थ नारीत्व को सिर न झुका दे, कामुकता, रमण आदि से सार्थक संज्ञा 'कामिनी', 'रमणी', 'प्रमदा' आदि से इसे सम्बोधित करे ? और मिलाइये जरा संसार की तिजलिजी तितलीनुमा नारियों को इनसे। कालिदास ने 'कुमारसम्भव' में उमा का जो चित्र खींचा है।

"यदुच्यते पार्वति पापवृत्तये न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वच।"

वह इस चीनी नारी के पक्ष में कितना सही है, कहना न होगा।

अभी इन्हीं भावनाओं से भरा था कि 'युवा-पयोनियस'—तरुण-तरुणियों की लाल रूमाल वाली सेना निकली। सफेद पेंट पर सफेद कमीजें, छवि निहारता रह गया। सहसा उन्होंने हजारों गुब्बारे एक साथ उड़ा दिए और अभी हम उस अनूठे करतब को देख ही रहे थे कि आसमान हजारों परिन्दों से ढक गया। लड़कियों ने बड़ी खूबी से शान्ति के प्रतीक कबूतर (जिस फाख्ता के चित्र सरकारी-गैर सरकारी इमारतों पर शहर-गांवों की दूकानों में, ओढ़ने-पहनने के वस्त्रों पर, झण्डे-पताकों पर हम सर्वत्र देखते आये थे) छिपा रखे थे जिन्हें उन्होंने एकाएक मुक्त उड़ा दिया और उनके डैनों से उस कड़ी धूप में बड़ी सुखद शान्ति मिली। अनेक कबूतर तो भटक कर हमारे पास उतर आये। रोहिणी भाटे, पूना की नाट्यशाला की संचालिका, पास ही खड़ी थीं। उनके पास एक जा पहुँचा। पास ही पाकिस्तान के, अखण्डित पंजाब के मुख्य मन्त्री सर सिकन्दर हयातखाँ की पुत्री और पुत्रवधू (पंजाब के मन्त्री के मन्त्री शौकत हयात खाँ की पत्नी) वहीं खड़ी थीं। रोहिणी ने पाकिस्तान के साथ सद्भाव और मैत्री के प्रतीक उस कबूतर को भारतीय नारी की ओर से तत्काल भेंट कर दिया। स्नेह और सात्त्विक सौजन्य का वह अपूर्व क्षण था।

आगे का दृश्य अलभ्य था। उसमें सेना के आतंक का स्पर्श तक न था। अपार उमडती जनता का वह जुलूस था, आंधी-तूफान की शक्ति लिये, अपना बोध आप कराने वाला। उत्साह और अपनी शख्सी इकाई का भेद भुला देने वाली, एकस्थ मानवता का समन्वित प्रवाह थी वह जनता। गांधी प्रेरित सन् बीस के जन समूह को याद कीजिये और उसका बीस गुना उत्साह, बीस गुनी जन संख्या, शान्ति-कोलाहल की कल्पना कीजिए, बस वही अगला दृश्य था। स्कूल के बच्चे, कालेजों के तरुण, रंग-बिरंगे झंडे, कागज के कबूतर, लाल-पीले-नीले-हरे बैलून और झंडे लिये चीनी राष्ट्र-निर्माताओं और मार्क्सवाद के नेताओं की तस्वीर हवा में लहराते आगे बढ़े। उसके बाद अल्पसंख्यक जातियों के जन-संकुल परिवार निकले, जिनके वस्त्र उनकी अपनी-अपनी कौमियत का परिचय दे रहे थे। फिर मजदूरों, कामगरों, किसानों के और फिर दुकानदारों, जुलाहों, कारखानों के मालिकों, और विविध पेशेवरों के, जिनका उल्लेख यहां असम्भव है। वह जनराष्ट्र जैसे २५ लाख की पिकिंग की उस जन-संख्या में सहसा उतर आया था।

माओ की विजय का सबूत, सेकसरिया जी, न वहां की सेनाओं में है, न स्तंभों पर खुदी प्रशस्तियों में। वह चीनी हृदयों की गहराई में है। कैसे व्यक्त करूं वह प्रभाव जब पायोनियरों में से अनेक छोटे-छोटे लड़के-लड़कियां तियेनान मेन के सामने पहुंचते ही द्वार-पथ की ओर दौड़ पड़े थे और ऊपर मचुओं के झरोखे के नीचे उस ऊंचाई पर जा चढ़े थे जहां माओ अपने सहकारियों के साथ खड़ा सेना की सलामी ले रहा था, जनता के आकुल हृदयों की बाढ़ जहां परेड के बहाने अपने इनन्त उल्लास हवा में मिला रही थी।

माओ कितना सरल, कितना आर्द्र, कितना बालवत्सल, कितना महान है। चीन के उत्तर-पश्चिमी छोर से कभी वह कोमिन्ताग की गोलियो की बौछार के सामने मार्च करता कान्तोन के पार्वतीय समुद्र तक जा पहुँचा था और उसके पैरो की चाप के सामने थियानसान पहाडो की ऊँचाइया ढुलक पडी थी। वही माओ बच्चो के हाथ पकडे उस जन-प्रदर्शन के बीच खडा था, परम्परा की ऊँचाई पर, परन्तु मानवता के समुद्र के किनारे, मानव हृदय के कितना निकट, उसकी आर्द्र गहराई में कितना डूबा! जो आवश्यकतावश फौलाद-सा कडा हो सकता है, वही कुसुम की नोक से भिद जाने वाला कितना नरम भी—वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि!

दस से दो बजे तक लगातार चार घंटे विस्तृत सोपान-मार्ग को मचोत्तरमचो पर खडे चमकती धूप में हम इन्हीं मानवी आर्द्र धाराओं से सिंचते रहे। कितनी जनता समुद्र की एक पर एक उठती गिरती वेला की भांति सामने से बह गई, नहीं कह सकता। शायद पांच लाख, शायद दस, शायद और अधिक, कौन गिन सका? और जब उसका ताता बन्द हुआ—और उसका ताता इसलिये बन्द नहीं हुआ कि उसकी इकाइयों का सम्भार घट चुका था, बल्कि इसलिये कि निश्चित काल अब अपनी परिधि पार कर चुका था—तो सहसा क्रिया टूटी। सभी आंखें तियेनान मेन की रेलिंग की ओर फिरीं, जहां वर्तमान चीन का निर्माता माओ सिर से टोपी उठाये हमारा अभिवादन प्रत्यभिवादन करता इमारत के कोने की ओर बढता आ रहा था। फिर फिर उसने हमारा अभिवादन किया। और तभी हम अपनी [illegible] अपने आवास को लौटे। हृदय भरा था, कान भरे थे, [illegible] थी। किसी के पास शब्द न थे। सब चुपचाप भीतर उठती [illegible] भावनाओं को सम्भाल रहे थे।

बहुत है। और अगर अपनी उंगलियों की थकान से नहीं तो उस अभद्रता के डर से तो पत्र खत्म करना ही होगा कि यह बेतरह लम्बा होगया है और इसे पढ़ते आप थक जायेंगे। पर विश्वास दिलाता हूँ कि जो देखा-सुना, उसके अनुपात में मेरा यह वर्णन गन्धमात्र भी नहीं है।

अच्छा, अब शाम तक के लिये विदा। सात बज गये हैं, आठ बजे तैयार होकर नीचे भागना है। आज से शान्ति-सम्मेलन का अधिवेशन, गांधी जी की जन्म तिथि के शुभ अवसर पर, शुरू होगा। लौट कर फिर लिखूंगा।

प्रणाम।

श्री सीता राम जी सेकसरिया,
केयडातल्ला स्ट्रीट,
कलकत्ता, २६

आपका,
भगवत शरण

पीकिंग,

२-१०-५२

प्रियवर,

आपको आज ही सुबह मैंने लिखा और चाहा था कि इस पत्र की बातें भी उसी पहले पत्र में लिख दूं पर प्राय लिखते ही लिखते भागना पड़ा था। इसलिये फिर लिख रहा हूँ।

पिछले दो दिन—यानी रात और दिन, फिर रात और दिन—हमारे लिये ऐसे अनवरत रहे हैं कि हमने उनकी सन्धि नहीं जानी है। कार्य-क्रम और व्यस्तता कुछ ऐसी रही है कि तारीखों के बदलने का कोई भान नहीं हुआ है। पहली रात, राष्ट्र दिवस की पिछली सन्ध्या, राष्ट्रीय दावत में बीती थी, अगला दिन राष्ट्रीय परेड और सैन्य निरीक्षण में और अगली रात नृत्य समारोह में, फिर आज का दिन [illegible] और शान्ति-सम्मेलन के उद्घाटन में। गरज कि रात दिन में समाती गई है, दिन रात में और हमें उनके जाने-आने का कोई [illegible] नहीं हुआ है। आज की शाम—यानी कि दूसरी तारीख की शाम, [illegible] कब आज में कैसे और कब बदल गया हमें जान नहीं पड़ा—[illegible] अधिवेशन से लौटकर नाट्य-गृह गया और जब वहां से [illegible] करके बैठा हूँ, तब गोया सांस लेने का समय मिला है।

रात तारों भरी थी, जवान रात, पर उसका कलेवर लाख-लाख तारों से, लाख-लाख बत्तियों से रोशन था। बिजली की बत्तियां, उनका अनन्त प्रसार तारों ही जैसा, जैसे तारे जमीन पर उतर आये हो, जैसे गहराते धुधलके में आसमान कुछ नीचे जमीन के पास सरक आया हो।

और इन लाखो-लाखों तारों के बावजूद लाखो-लाखो बत्तियों के बावजूद, रात की अपनी गहराई थी, अपनी हस्ती जमीन से आसमान तक फैली हुई, स्याह फर्मासिन हस्ती, जो दिल वालो को बेबस कर दे, पाकदामन को गुनहगार।

पर वह गुनाहो की रात न थी, हुलास की थी, इन्सानी रंगरेलियों की, जो जिन्दगी के साये मौत पर हंसती है। दुनियां के हर कोने में मुर्दनी छाई है, इन्सान बेरौनक है, डरा हुआ, कोने में दुबका हुआ। क्योंकि सहार का देव अपने जबड़े फाड़े उसे लील जाने पर आमादा है। इन्सान डरा हुआ कि आसमान में बमबाजों की घर्र-घर्र है, गोले फूट रहे है, एटमबम की धमकी गूज रही है, इन्सानी विरासत खतरे में है—कहीं गाले दायरे से भटक न जायें, कही शोले फूस की झोपडियो को छू न लें!

पास ही, चीन की सरहद पर ही, जिन्दगी मौत से लड रही है, पर जिन्दगी भी अपनी अहमियत रखती है। उसे भी मार देना कुछ आसान नहीं। पत्थर को तोड़कर हरा तिनका सिर उठाता है, ओले, मेंह के तीर उसे छेदते है, लू और प्रतापी सूरज की धूप उसे झुलस देती है, पर पौध नीचे को नहीं लौटती, बढ़ती ही जाती है, एक दिन अश्वत्थ बन जाता है, सिर से छत्र उठाये जिसकी शीतल छाया में इन्सान-हैवान दम लेते है, जिसे परसकर लू मलयानिल बन जाती है।

ठव में, शरत् की गुदगुदाती हवा में लाख-लाख कण्ठो से फूटती कांपती आवाज पसरती चली जाती है, अन्तरिक्ष की सीमाओ को छू लेती है।

फटते गोलो की तरह, फटकारती चाबुक की तरह, गरजते बादलों की तरह आतिशबाजी फूटती है। उसके शोले तीर की तरह आसमान को चीरते चले जाते हैं, सहसा उसके हजार टुकडे हो जाते है, फिर लमहे भर को जब ये आसमान में टंग जाते है, तब पता नहीं चलता कि ये तारे है या शोले। आतिशबाजी, सेकसरिया जी, आप जानते है, चीनियो की अपनी चीज है। उन्होने इसी के लिये बारूद की खोज की थी, उस बारूद को, जिसका इस्तेमाल पच्छिम के राष्ट्रो ने ईसा की राह छोड शैतानपरस्ती में किया।

पच्छिम ढलते सूरज की दिशा है। वेद की आवाज है—मा मा प्राप्तप्रतीचिका—पश्चिम पतन का मार्ग है, मरीचिका का, उसमे न गिरो! ससार को आलोकित करने वाला प्रकाश, स्वय सूरज, उधर ढुलक कर डूब जाता है। बारूद का मकसद ही बदल गया। जहां वह आदमी की थकी मेहनत भरी जिन्दगी को उमग देता, वहां पच्छिम ने उसे मौत का जरिया बना डाला गोया मरने के साधन दुनिया में कम थे!

है ? अपने ही देश में अहीरों-सन्थालों, उरांव-मुंडों में देखिए। उनमें सामूहिक नृत्य होता है, जिन्दगी झूले में पेंग मारती है, शेष राष्ट्र का जीवन जैसे बनावटी बन गया है, अनोखी मरी संस्कृति का, घुटे दम का। एक जमाना था, जब हम भी सामूहिक रूप से नाचते-गाते थे। धीरे-धीरे हम में आचार की एक खोखली भावना जन्मी, हमने नाच-गान को हेय करार दिया, उनके उपासकों को वर्णेतर कर दिया। हमारे उल्लास के साथ ही तब हमारी कला भी मर गई, उसने वेश्याओं के छज्जों में शरण ली। दोनों एक से घिनौने करार दे दिये गये।

चीनियों ने इस तथ्य को समझा। उन्होंने अपने उस पुराने राष्ट्रीय नृत्य-समारोह को फिर से जिला लिया। लाखों नर-नारी, बाल-युवा-प्रौढ़, उस रात नृत्य के झूले पर सवार थे। उनके दिल की गाँठें खुल पड़ी थीं। रात के उन दस घंटों के लिए उनके पास सिवा हँसी-खुशी के, सिवा प्यार-मुस्कान के और कुछ देने को न था। सारे दुख-अभाव, द्वेष-दुश्मनी, छूत-परहेज उन्हें भूल गये थे। संसार उनके लिए व्यर्थ न था, जन्म दुःख न था, आशा मरी न थी। और आनन्द का यह भँवर जब उठता है, तो सहसा खत्म भी नहीं हो जाता, पसरता है, जल की सतह पर दूर फैलता चला जाता है, किनारों तक।

आनन्द की भी लहर होती है, जो हवा की तरह सबको छू लेती है और जब वह छू लेती है, तब आदमी उसका हो होकर रहता है। सहसा कुछ दक्षिणी अमेरिकन (लैटिन अमेरिकन) वहाँ हमारे बीच सीढ़ियों पर ही नाचने लगे। चीनी नाच नहीं, अपना नाच। नाच तो आनन्द की अभिव्यक्ति है, उसका स्फुरण। उसके तरीकों में आनन्द का महत्त्व नहीं है, केवल उसके उल्लास में है।

फिर चार का, फिर पाँच, आठ, दस का और फिर बीस-बीस पचीस-पचीस का। याको में हाथ पकडे ही पकडे चलते हुए घूमना भी पडता है, पर यहाँ किसको वह नाच आता था, सभी केवल कूद रहे थे। उनमें जब किसी यूरोपियन को विशेष जोश आता तो वह अकेला ही अपने कायदे से नाचने लगता। आखिर उनमें भी तो नाच की प्रथा जीवित है, इससे पैर सही-सही रखने में कोई दिक्कत नहीं थी। दिक्कत हम लोगों की ही थी, भारतीयो, पाकिस्तानियो, लका-निवासियो की, जो बस घेरे में कूद रहे थे।

मैं अभी अलग ही था, नाच से कतरा ही रहा था कि नीचे की भीड में से हमें मैदान में बुलाने की आवाजें आने लगीं। लोग—औरत-मर्द—हमें अपनी ओर खींचने लगे। मैं अब दस बजे के बाद होटल लौट जाना चाहता था, पर जा न सका। लोगो ने नाच में समेट ही लिया। आगे हमारी दुभाषिया वाग, पीछे मैं, मेरे पीछे अमृतराय, फिर डा० अलीम उस भीड में धँसे। भीड नाचने वालो की, देखने वालो की, देखते-देखते नाचने लगने वालो की, असख्य थी। राह बनाना कुछ आसान न था। पर हमें शान्ति के प्रतिनिधि, मेहमान और भारतीय समझ लोग अपने-आप राह बना देते थे।

हम उस अपार भीड में घुसे, एक के पीछे एक। थोडी-थोडी दूर पर गोलाघर-सा बन गया था, जिसमें तरुण-तरुणियाँ बीस-बीस की तादाद में एक साथ एक-दूसरे के हाथ पकडे याको नाच रहे थे। हम जैसे ही एक में घुसे एक अत्यन्त सुन्दर प्रसन्नवदन लडकी ने मेरा हाथ पकड़ लिया, कुछ कहा। मैंने वाग की ओर जिज्ञासा से देखा। उसने बताया—"कहती है—इन से कह दो, ससार के सभी शान्ति-प्रेमियो का परिवार एक है।"

मेरा भी रोयां-रोयां जैसे उसके शान्ति के अनुरोध से पुलक उठा। सहसा गगनभेदी नाद अन्तरिक्ष में गूज उठा—'होपिंग वासे!' शान्ति चिर-जीवी हो! और अभागे कहते हैं कि शान्ति के जलसे झूठे बनाये हुए हैं। शायद वह लड़की भी बनायी हुई थी। जिसके हृदय है, जो युद्ध के संहारक फल को चख चुका है, जिसे इन्सान की विरासत को बचाने की हविस है, वह जानता है, यह गूज बनावटी नहीं है, शान्ति की आवाज बनावटी हो नहीं सकती। और अब भी, जब उस आवाज को घंटों गुज़र गये हैं, वह मेरे रग-रग से उठ मेरे कानों को भर रही है—'इनसे कह दो, संसार के सभी शान्ति-प्रेमियों का परिवार एक है!'

गान और नाच होते रहे, घंटों हम सभी उसमें शामिल थे, मैं भी था। न गाने का स्वर पकड़ पाते थे, न नाचने का कदम, मगर शामिल पूरे-पूरे थे, तन-मन से। हमारा उचकना देखकर कोई कोई लड़के-लड़कियां हमें बताने का भी यत्न करते पर जिनके पैर उस दिशा में कभी उठे ही न थे उनमें नृत्य की गति कहां से आ सकती थी!

अपने यहां हम सदा तमाशबीन ही रहे हैं। धोबियों, कहारों के नाच-गाने को, अहीरों, जाटों की तड़पती भावभंगियों को, उरांव-मुंडों की आदिम ताजी हवा में लहराती गेहूं की क्यारियों-सी कतारों को हमने सदा केवल तमाशबीनों की तरह देखा है। हम उनमें कभी बस नहीं पाये, उनमें कभी बसने का प्रयत्न ही नहीं किया, सदा उन्हें हेय समझा, और अपनी नागरिक तथाकथित सभ्य ऊंचाइयों से उनका स्पर्श वर्ज्य करते रहे। राजनीति में भी हमारी तमाशबीनी इसी प्रकार थी।

अनोखी भीति। और जो इस प्रकार की भीड नर-नारियों की, विशेषकर लहराती जिन्दगी के प्रवाह में, नाच-गान के बीच हो, तो क्या हो-गुजरे, भगवान जाने! पर पिछली रात, सेकसरिया जी, लाखों तरुणों, लाखों तरुणियों के एकस्थ समारोह में, जहाँ राह मिलनी कठिन थी, बदन से बदन छिलता था, उस भीड के बीच, हाथ में हाथ कसे, हँसी की छूटती फुहारों के बीच, थिरकते पैरों, गाते कंठों के बीच क्या किसी ने कहीं किसी प्रकार का स्खलन, किसी तरह की बेहूदगी, ओछापन देखा? सुना?

अपने शहर में अपनी बहन के साथ बाहर निकलते वह दिन नहीं, जब घिनौनी आँखें लोगों के जिस्म नहीं छेद देती हों, जब आवाजकसी नहीं सुननी पडती हो। फिर इस चीनी समारोह की बात सोचें और चीनियों के इस सामूहिक जीवन पर उन्हें बधाई दें। यह माओ का संसार है।

नाच के एक गिरोह से निकलते, दूसरे में शामिल होते घंटों बीत गये। साढ़े तीन बज चुके थे, जब हम होटल को लौटे। अमृतराय तो होटल से दम लेकर फिर नाच की ओर लौट पडे पर मैं और डा० अलीम कमरे में घुसे। डाक्टर थके थे, उन्होंने पलंग का सहारा लिया, मैं भावबोझिल था, मैंने कलम पकडी। पर अब लिखकर भी सोचता हूँ, क्या सचमुच कुछ लिख सका? उसे लिखने के लिये जो देखा है, शारदा की वाणी, गणेश की कलम चाहिये। मुझे तो वही गुसाईं जी की वाणी याद आती है—गिरा अनयन, नयन बिनु बानी!

अच्छा, बन्द करता हूँ, प्रणाम। पन्ना जी को स्नेह कहें, और उनकी उस लडकी को प्यार, जिसका अच्छा-सा कुछ नाम है, पर याद नहीं।

श्री सीताराम सेकसरिया
कलकत्ता,

आप का ही,
[illegible]

पीकिंग,

२ अक्तूबर, १९५२

कविवर,

कई दिन पहले लिखना चाहता था पर पीकिंग का समारोह कुछ ऐसे बवण्डर-सा है कि एक बार उससे छू जाने से फिर उसी में खो जाना पड़ा है। पर आज, जो कई दिनों से गुनता आया था, लिखना ही पड़ा। उचित तो यह था कि कुछ नरम-तरल लिखता, कुछ मर्म की बात, जिससे आपके स्निग्ध आर्द्र मन को ठेस न लगे। पर वह काम मेरा नहीं, आपका है—कल्पनाओं की दोला जिसका आधार है, मलय का स्पर्श जिसकी रज्जु है, मकरन्द की सुरभि जिसकी हिलोर है। मैं तो आज की बात लिखने जा रहा हूँ। आज के इस पीकिंग की जिसके आंगन में दूर देशों के तपस्वी, साधक और जन-सेवक, कवि और चिंतक एक चित्त से विश्व में युद्ध का विरोध और शान्ति का आह्वान करने आये हैं। जानता हूँ, कवि, आपको भी शान्ति की यह अर्चना अभिमत है।

को पुलकित कर देती है। कभी पढ़ा था—

गायन्ति देवा किल गीतिकानि धन्यास्तु ते भारतभूमि भागे।
स्वर्गापवर्गास्पद मार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषा सुरत्वात्

वह अपने देश की बात थी, पूर्वजों की गर्वोक्ति जिसे अंगीकार न कर सका था, जैसे उस अवाच्य को भी नहीं जो मनु की लेखनी से प्रसूत हुई थी—

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन ।
स्व स्व चरित्र शिक्षेरन् पृथिव्या सर्व मानवा ॥

पर वही बात जब तुर्सूनजादे ने कही तो शरीर का रोया-रोया खिल गया। सच, वह बात अपने मुँह से कहने की नहीं, दूसरों के मुह से कही कानमात्र से सुनने की है।

नाजिम हिकमत, जिसके सिर के बाल अधिकतर जेल की तनहाइयों के अंधेरे ने सफेद किये हैं, ऊँचाई में सवाई तुर्क है, पर गाथा के उद्गीरण में हाल का प्रतिस्पर्धी। ३७ राष्ट्रों के ४०० से ऊपर प्रतिनिधि विशाल सभा-भवन में उपस्थित हैं। सुर्ख रंगे हाल के अन्तरंग बहिरंग रंग की ताजगी लिए हुए हैं। सामने के डायस पर ३७ राष्ट्रों के झंडे अपने-अपने प्रतीकों के साथ हल्के लहरा रहे हैं। उनके बीच संसार के महामना अनुपम पिकासो द्वारा चित्रित विशाल दूध-से सफेद डैनों वाला कबूतर पंख मार रहा है। कबूतर जो मानवता के मर्म का प्रतीक है, जीवन के अंतिम योग का, राग से स्पन्दित हृदयों का, स्निग्ध पावन काम का। और उसे उस पिकासो ने चित्रित किया है-

की याद कुछ ऐसी नहीं जिसके राज की बगैर चर्चा किये आगे बढ़ जाऊँ। जर्मन तोपों की मार से स्पेन के युद्ध में 'गेर्निका' का यह छोटा क़स्बा बरबाद हो चुका था, उसके पल्लव-पल्लव पर, हरी दूर्वों पर, कलियाई टहनियों पर, खिले फूलों पर रक्त के छींटे थे, हवा में पराग की बास चिरायध की बू से दब गई थी। जर्मन पैरों की चाल से हवा तक सहमी हुई थी, परिन्दे आशियानों को छोड़ दूर के आसमान में खो गये थे। उसी गेर्निका के चीत्कार पिकासो ने अपनी कूर्च से लिखे। चित्र स्टूडियो में टँगा हुआ था। नात्सी-फाशिस्ती चोटें पेरिस की छाती तोड़ रहीं थीं, तभी जर्मन सेना की एक टुकड़ी ने स्टूडियो में प्रवेश किया। नायक ने चित्र की ओर उंगली उठाते हुए पिकासो से पूछा, "यह क्या तुम्हारी कृति है?" (Did you do that ?) निर्वाक् चित्रकार ने उत्तर दिया, "नहीं, तुम्हारी"। (No, you did that !) और उस महामना से पेरिस में जब मैंने उस कहानी की सच्चाई पूछी तो चित्रकार चुप रह गया। मन कह उठा कि अगर यह घटना सच न भी रही हो तो सच हो जाय।

उसी पिकासो-चित्रित कबूतर को देख, जो जैसे एक वृक्ष की ३७ शाखों में पर मार रहा था, नाज़िम हिक्मत का कवि-हृदय गा उठा—

तमाम पेड़ की ३७ शाखाएँ,

गई। हाल में खडे संकडों-संकडो पृथ्वीपुत्रो को, दुनिया के दूर किनारो से आने वाले प्रतिनिधियों को मां के दूध से पावन लगे थे। बार-बार नाज़िम की वे पंक्तियां मानस-पटल पर दौड जाती हैं—मां के दूध-से पवित्र श्वेत कपोत के डैनो की फडफडाहट जैसे इस दम भी मानस में भर जाती है जब, अभिराम कविवर, आपको लिख रहा हूं।

और नेरुदा की वे पंक्तियां, जिसने सर्वहाराओं को ज़मीन पर टिके रहने के लिए घुटने दिए थे और पाल राबसन का वह सन्देश जो दलितों-पीडितो तक ज़मीन को अधिकारी-सा भोगने की आवाज़ लाया था। ३७ राष्ट्रो के ८०० से ऊपर प्रतिनिधि उस विशाल हाल में आज गाधी के जन्म के दिन खडे थे—उस शान्ति की रक्षा का व्रत लेने जिसके लिए वह अमर शहीद जिया और मरा था। प्रतिनिधि, जो पाच-पांच हजार मील का चक्कर लगाकर पीकिंग पहुंचे थे, जिनकी राह में मौसम जितना बाधक हुआ था, उससे कहीं बढकर क्रूर मनुष्य की सत्ता बाधक हुई थी, राह में तलाशी के लिए जिन्हे बेपर्द कर दिया गया था, जिनके पासपोर्ट छीन लिए गये थे। क्यो? कविवर, क्यो? अमन का पैगाम ले जाने वाले मानव-प्रतिनिधियो के प्रति यह अनुशासन क्यो? शीतल मलय के कोमल स्पर्श के प्रति यह क्षोभ की भावना क्यो? फूलो की नर्म राशि पर यह अगारे क्यो?

प्रशान्त महासागर के तटवर्ती राष्ट्र, एशिया, पालिनेशिया, कनाडा, सयुक्तराष्ट्र अमेरिका, लैटिन अमेरिका, न्यूज़ीलैंड, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका और यूरोप की मानव-जाति के आधे से अधिक के प्रतिनिधि उस हाल में खडे हुए और उन्होंने विश्व से युद्ध को बहिर्गत कर देने का व्रत लिया।

निकलकर देखी तो आंखें अंधी हो गईं थीं। सेंतीस राष्ट्रों के प्रतिनिधियों के नेता दो-दो की संख्या में अध्यक्ष-मण्डल में शरीक हुए, सामने के मंचों पर जा बैठे। फूलों के पीछे बैठे उनके अभिराम कलेवर देवदूतों के-से लगते थे और जब उन्हें बालक-बालिकाओं ने फूलों के स्तवक प्रदान किये, उन्हीं में जा बैठे, तो ये बालक-बालिकाएँ फूलों की ही तरह उनके बीच खिल उठीं। भारत की ओर से डा० सैफुद्दीन किचलू, गुजरात के श्री रविशंकर जी महाराज और डा० ज्ञानचन्द बैठे। चीन के राष्ट्रीय नेता दिवंगत डा० सुनयात सेन की पत्नी ने मेयर के स्वागत के पहले सुन्दर भाषण दिया, शान्ति के पहलुओं पर प्रकाश डाला। मानव-जननी राष्ट्र सेविका नारी की आवाज बार-बार प्रतिनिधियों के अन्तर में प्रतिध्वनित होने लगी। मुनासिब था कि फूलों के पीछे झण्डों के बीच पर फड़फड़ाते सफेद कबूतर के सामने महामना नारी अपनी आवाज उठाये और उसकी छाती का दूध सहसा बह चले।

मनोभावों का वेग कितना प्रखर है, कवि, शारदा के साधनों की परिधि कितनी सीमित! व्यंजना से अव्यक्त की व्यापकता कितनी अनन्त है! न कर सकूंगा, निश्चय न कर सकूंगा उसकी अभिव्यक्ति, जिसके रस से देह का कण-कण आप्लावित हो रहा था, एक-एक सांस जिससे प्राण पा रही थी।

प्रति वहन कर रहे थे। तुनहुआग के भित्तिचित्रों का आलेखन स्वयं अपनी ऐतिहासिक सम्पदा लिए हुए था, जिनका सन्दर्भ अतीव प्रासंगिक था। तुनहुआग की गुफाएँ, अजन्ता के दरीगृहों की प्रतिबिम्ब हैं। अजन्ता के भित्तिचित्र कभी बौद्ध शान्ति-साधकों की तूलिका से तुनहुआग की गुफाओं में सजीव हुए थे। तभी, जब इसी चीन के कान्सूप्रान्त के हूण रोमन साम्राज्य को तोड़ भारत के गुप्त साम्राज्य की चूलों पर चोटें कर रहे थे, जब विलासप्रिय शक्रादित्य कुमारगुप्त का साधनशील तनय स्कंद उन क्रूरकर्मा आक्रान्ताओं से टकरा रहा था—

हूणैर्यस्य समागतस्य समरे दोर्भ्यां धरा कम्पिता।

भीमावर्तकरस्य

जिसने उस संकट के काल सामान्य सैनिक की भांति रणभूमि में रातें बिताई थीं—

क्षितितलशयनीये येन नीता त्रियामा।

कितना महान् अन्तर रहा होगा उन शान्ति-साधकों का, जिन्होंने अपने गौरवशील साम्राज्य की रीढ़ तोड़ते हूणों के अपने घर में ही, चीन के कान्सू में ही, कान्सू के तुनहुआग में ही, बुद्ध का शान्ति-सन्देश पत्थर के आधार पर अपनी कूचों-तूलिकाओं से लिखा। और शान्ति के संवाहकों का चीन तक पहुँचना भी कुछ आसान न रहा था—कश्मीरी कराकोरम की खड़ी चढ़ाइयाँ, दुनिया की छत पामीरों की बर्फीली चोटियाँ, जलविहीन गोबी का सूखा मरु-प्रसार और प्यास लगने पर अपनी ही सवारी के टट्टू की नस काट उसके रक्त से हृदय की जलती प्यास बुझा लेना। इस परम्परा में हजारों मील से दूर आये शान्ति के प्रतिनिधि सदस्यों के उस हाल में जुड़े हुए थे, जहाँ चीनी, रूसी, अंग्रेजी और स्पेनी में एकता की निष्ठा आवाज़ उठा के प्रत्येक कण्ठ के साथ उठ रही थी—'शान्ति चिरंजीवी हो।'

प्रवल चीनी जनता को, जो अपने महान् नेता माओत्से-तुग के नेतृत्व में एशिया में शान्ति की शक्तितम आधारशिला है।" कुछ ही बाद पीर मकी शरीफ की आवाज़ बुलन्द हुई—"हमने कस्द कर लिया है कि हम अमन की रक्षा करेंगे और यदि जरूरत हुई तो हम जबर्दस्ती उसकी हुकूमत क़ायम करने से भी हाथ न खींचेंगे। अमन महज़ चाहने से ही नहीं क़ायम की जा सकती और हमें वे तरीके एक साथ मिलकर तैयार करने होंगे जिनसे इत्तिफाक की दुनिया आबाद की जा सके।" यह उस मकी शरीफ के पीर की आवाज थी, पाकिस्तान के उस खूंखार सिपह की जिसके इशारों से कभी कश्मीर पर खूनी हमले हुए थे और बारामूला के गांव खून से रंग गये थे। कबिलाइयों के महान् नेता इस पीर की आवाज बेशक अमन की फतह थी और इस तरह अमन के जादू को आज हमने जंग के सिर पर चढ़कर बोलते सुना।

सांझ हो गई तब हम उठे और होटल में दाखिल हुए। अलसाई सांझ तारों के हज़ार प्रकाश-करों में उलझी हुई थी, जब हम मचुओं के उस हाल से बाहर निकले थे। किसने सोचा था कि क्रूरकर्मा, विलास-प्रिय मचुओं के इस पानभूमि में, उनके इस घिनौने क्रीडास्थल पर कभी संसार के प्रतिनिधि उनके सावधि प्रतिनिधियों का मुकाबला करेंगे, शान्ति के उपकरण हाथ में लेंगे, युद्ध-विरोधी नारों से उस हाल को गुंजा देंगे।

करता हूँ स्वस्थ होंगे, दूर पीकिंग से आपके स्वस्थ स्वास्थ्य के लिए कामना करता हूँ, स्नेह भेजता हूँ।

श्री सुमित्रानन्दन पंत,
उत्तरायण,
टैगोर टाउन, आपका ही,
इलाहाबाद। भगवतशरण

पीकिंग,

९ अक्तूबर, १९५२

प्रिय एल एन,

कई बार खत लिखना चाहा पर इससे पहिले लिख न सका। आज लिख रहा हूं, जब जिस्म का रोआं-रोआं खुशी से फड़क रहा है। आज का दिन असाधारण था। शान्ति सम्मेलन में आज जो इन्सानी मुहब्बत के नज़ारे देखे वे सदा देखने को नहीं मिलते। देखनेवालों की आंखें भरी थीं, सुनने वाले सुनकर अघा गये, कहने वालों की आवाज़ में खुशी की झंकार थी।

आज शान्ति सम्मेलन में हिन्दुस्तान और पाकिस्तान ने काश्मीर के मसले पर सम्मिलित घोषणा की। जिन हस्तियों ने इधर के सालों में भारत और पाकिस्तान के बीच बैर के बीज बोये हैं,

नीति में हस्तक्षेप करने का मौका देती है और कि हम स्वीकार करते हैं कि जम्मू और काश्मीर की समूची जनता ही अपने भाग्य और भविष्य का निपटारा कर सकती है और उसे अपना वह हक प्राप्त करने का मौका मिलना चाहिए, और कि हम हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की जनता से अपील करते हैं कि वह तुरन्त ऐसे कदम उठाए जिससे जम्मू और काश्मीर की समूची जनता समता और ईमानदारी के आधार पर बगैर किसी रुकावट, डर और पक्षपात के अपने भाग्य का स्वतन्त्रतापूर्वक निर्णय कर ले।

यह घोषणा तो असाधारण महत्त्व की थी ही इसके सम्बन्ध के दृश्य, जैसा पहिले लिख चुका हूँ, बड़े रोचक थे। विभाजन के बाद पहली बार दोनों देशो के प्रतिनिधि प्यार से मिल रहे थे जैसे भाई-भाई हो। इन पिछले दिनो में हिन्दुस्तान और पाकिस्तान ने क्या न देखा था। जिस बर्बरपन से दोनो मुल्को में खून-खच्चर हुआ था उसका सानी दुनिया के इतिहास में नहीं। बगाल और पजाब, बिहार और उत्तरप्रदेश की जमीन आज भी खून से लाल है। उनकी बची हुई जनता आज भी दर्दनाक कारनामो की याद से भरी है, आज भी सदा के लिए बिछुड गए अकाल मारे आत्मीयों की याद उन्हें सहसा सता उठती है। चीन की जमीन पर जो सहसा बिछुडे हुए भाईयो के दिलो में मुहब्बत की बाढ आई तो इन्सानियत की तरलता, एक बार अनायास बह चली। सारा सम्मेलन, रेडियो पर कान लगाए बैठी जनता, उस प्रेम की बाढ़ से आप्लावित हो उठी। दृश्य होते हैं, एल एन, जिसे लेखनी लिख सकती है, जबान कह सकती है, पर दृश्य ऐसे भी होते हैं जिन्हें लिखते गणेश की लेखनी भी असमर्थ हो जाती है, शारदा की जिह्वा भी बेकार। नहीं लिख पाता हूँ उस घटना का ब्योरा, जो शान्ति सम्मेलन के उस रगमच पर घटी। कान खोले, आंखें लगाये दूर की साम्राज्यवादी शक्तियो की जमीन उनके पांव तले सरक पडी, उनकी पृथ्वी में जलजला आगया। मानवता की वह पहली विजय थी। मनुष्य का क्रोध बुरा होता है पर

मानवता का स्नेह उसकी आग पर पानी डाल देता है। प्यार की रहमत बदले के सन्तोष से कहीं बड़ी है।

जब भारतीय और पाकिस्तानी प्रतिनिधि मण्डलों की नारियाँ सम्मेलन की बैठक के बीच से डायस की ओर बढ़ीं तो लगा इन्सानियत का एखलाक देवियों का रूप धरे बह चला है। प्यार और सौजन्य की मूरतें, मिली जुली, जमीन पर जैसे सावन छा गया। देवताओं की स्वर्ग-सभा चुपचाप देखती रही, वरुण के चर अपलक निहारते रहे वह दृश्य जब भारतीय नारी ने अपनी पाकिस्तानी बहन को भेंटा। कितना सौरभ हवा में उठा, कितना प्यार आँखों से कढ़ा, यह कहना कठिन है। दोनों देशों की नारियों ने उन दिनों कितना सहा था। पति और पिता, भाई और बेटे उन्होंने अपनी आँखों से जूझते देखे थे, कत्ल होते, और अपनी अस्त-मत हजार कोशिशों के बावजूद वे न बचा सकी थीं। आज वह सब कुछ याद करके भी भूल रही थीं और मानवता के प्रेम की बेलें वे फिर अपनी छाती के दूध से सींच चली थीं। क्या वे बेलें जमाने की बेरुखी से, मेरे प्यारे दोस्त, कभी सूख सकेंगी!

चोट की है। पर आज का नजारा उससे कहीं मार्मिक था, कहीं पुरअसर बिलखती मासूम मानवता पर जैसे मा के प्यार का हाथ पड गया था और सारी जनता भरी आँखों से, भीगी पलकों से उस दृश्य को निहार रही थी। उसके गाल गीले थे उसका कणकण आर्द्र हो चला था। हाल के सारे प्रतिनिधि खडे थे। २७ मिनट तक लगातार तालियां बजती रहीं और बाद कितनी देर तक गीले गालों ने अपनी कहनी दूसरों को सुनाई यह भला मैं क्या कह सकता हूँ।

भारतीय प्रतिनिधि मण्डल के नेता डा० सैफुद्दीन किचलू जब पाकिस्तानी प्रतिनिधि मण्डल के पेशवा मकी शरीफ के पीर से गले मिले तब राम और भरत का मिलन जैसे मूर्तिमान हो उठा। काश्मीर के मसले पर ऐलान का वह दृश्य कितना ओजमय, कितना मर्मस्पर्शी, कितना शालीन था।

उस ऐलान पर भारत और पाकिस्तान दोनो के प्रतिनिधियों ने दस्तखत किये, दोनों तरफ के चार-चार प्रतिनिधियों ने। पाकिस्तान की ओर से तीन ने उर्दू में और एक ने बगला में, और हिन्दुस्तान की ओर से एक ने उर्दू में तीनने हिन्दी में। हिन्दी में दस्तखत करने की बात मैं इसलिए खास तौर से लिख रहा हूँ कि उस सम्बन्ध में अपने देश में गलतफहमी हो जाती, कुछ अजीब नहीं। मजे की बात तो यह है कि ये चारों अहिन्दी भाषा-भाषी थे। इनमें से किचलू साहब को उर्दू में दस्तखत करनी पडी, क्योंकि अगर वह ऐसा न करते तो अंग्रेजी में करनी पडती, जो निश्चय बेजा होता। बाकी डा० ज्ञानचन्द, श्री रविशकर जी महाराज, और श्री रमेशचन्द्र ने हिन्दी में दस्तखत किए। रमेशचन्द्र की दस्तखत तो हिन्दी में कुछ ऐसी है कि लगता है जैसे सामने पहली बार किसी से नाम लिखवाकर उन्होंने नकल कर ली हो। हिन्दी के प्रति लोगों का यह बढ़ता हुआ आदर हमारे सन्तोष का कारण होगा।

बन्द करता हूँ अब। अभी बाहर जाना है। लोग नीचे के लाज में भर रहे हैं। मिसेज गुप्ता से मेरा स्नेह कहें, बच्चों को प्यार।

आपका ही

श्री लक्ष्मी नारायण गुप्त, आई ए एस, भगवतशरण,

सेक्रेटरी, शिक्षा विभाग,

हैदराबाद।

पीकिंग,
११ अक्तूबर, १९५२

नरेश,

आज सहसा तुम्हारी याद आई। सुबह का सुहावना समय था, अलल सुबह का। तारे जो रात भर चमकते रहे थे, अब सो चले थे। चांद अब उतना सफेद न था, हल्का पीलापन उसपर छागया था। उसकी ज्योति मन्द पड गई थी पर उषा की लालाई के बावजूद उसकी इतनी चांदनी जगत पर अपनी सुकुमार सुषमा डाले हुए थी। महीन रुई की चादर-सा एक फुल्का बादल उसे ढके हुए था, पर चांद झिलमिल-झिलमिल जैसे उसके पीछे से झांक रहा था।

चांद क्षितिज के उतार पर था, देखते-ही-देखते हल्के से उतर गया उसकी आड में। एक धुंधला-नीला आसमान एक ओर उषा की लालाई लिए, दूसरी ओर हल्के ढुलकते कामरूप मेघो का ससार उठाये आंखो में रम चला। उषा के लाल तुरगो के श्वेत रथ को देख अनेक टियोनस अपनी क्षणभगुर मानव-काया पर बिलख उठे हैं, अनेक ऋषियो ने उसके नित्य शुभ्रवसना छलियारूप की उस कसाई से उपमा दी है जो पक्षी को तिल-तिल काटता है, मानव-जीवन की नित्य-प्रति घटती जाती आयु की भांति।

और लगा जैसे उषा के रथ के तुरग सहसा ठमक गये हो। तभी तुम्हारी लाइनो को फिर धीरे-धीरे गुनगुना उठा—

अश्व की वल्गा लो तुम थाम,
दिख रहा मानसरोवर कूल—

देर तक इन्हें गुनगुनाता रहा, फिर धीरे-धीरे सम्मेलन में नित्य मिलने वाले कवियों की काया मानस में उठी—सलामिया की, तुर्सूनजादे की, नाजिम हिक्मत की। सलामिया स्पेनिश भाषा का मधुर कवि है, कोलम्बिया का अनुपम आवारा, जो आवारा आज है, पर कभी सरमाया-दारों में था, विदेशों में कोलम्बिया का राजदूत, स्वदेश में शिक्षा-मन्त्री। आज वह आवारा है अपने ही राष्ट्र की सत्ता का शिकार, जिसने आर्जिनेन्टिना में पनाह ली है। मझोले से कुछ ऊंचा, गठा शरीर, घुंघराले बाल, सुबह की दूज की चांदनी-सा लाल पीला रंग, जैसे पीला कमल कुम्हला गया हो। शान्ति-सम्मेलन का सुन्दरतम नर, मेरा प्रिय सहचर, अभी उस दिन उसने अपनी कविताओं का संग्रह मुझे भेंट किया था जिसे मेरे अज्ञान का आवरण आज भी ढके हुए है।

तक, तीसरे पहर से देर शाम तक हुआ करते हैं और दोनों बैठकों में बीच-बीच में कोई १५ मिनट की रेसेस हुआ करती है। तब हम सभा-भवन के पीछे के हाल में, दूर पीछे के आकर्षक लान के दोनों ओर के हालों में चाय पीते हैं, फल और मिठाइयां खाते हैं या लान की हरियाली पर प्रतिनिधियों से मिलते, चहलकदमी करते हैं। कल सुबह की बैठक की रेसेस में जब चिली के एक भावुक कवि और पाब्लो नेरुदा के मित्र के साथ लान पार कर बांये ओर के हाल में घुसा तो आंखें मिलते ही नाजिम हिकमत को मुस्कराते-बुलाते पाया। वैसे भी देखते ही उस ओर अनायास बढ गया होता पर आमन्त्रण खासा सम्मोहक था। हंसती आंखें कुछ दब गई थीं, होठों के खिच जाने से दमकते दांत कुछ खुल गये थे।

टूटी-फूटी अग्रेजी में कवि ने स्वागत किया। हाल लोगों से खचाखच भर रहा था। उधर अपने श्रोताओं की भीड लिये चीन के शिक्षा-मन्त्री क्वोमोरो खडे थे, जिनसे कल मेरी खासी लम्बी बात हुई थी। उधर चीन के प्रख्यात साहित्यकार एमीशियाओ खडे थे और उधर रूस के अन्तर्राष्ट्रीय साहित्य के सम्पादक ऐनिसिमाव चाय की चुस्की भर रहे थे। बीच में दीवार से लगे सोफे के पास हम खडे हुए, फिर बैठ गये। बैठते ही नाजिम हिकमत फ्रेंच में कुछ बोले और हंस पडे और सहसा मेरे सचेत होने के पहिले ही धारा प्रवाह फ्रेंच बोलने लगे। थोडी देर तक मैंने सुना, कुछ बोलने का प्रयास किया, कवि ने रोक दिया। कहा—सुनो। मैं सुनता गया। वह कहता गया, उसी धाराप्रवाह फ्रेंच में। जब-जब कुछ कहने के लिये बीच में उन्मुख होऊं, तब-तब कवि मेरे कधे पर हाथ रख मुझे रोक दे और अनेक बार तो उसने कहा—ठहरो, मुझे कह लेने दो, मुझे पहले खत्म कर लेने दो, फिर तुम अपनी कहना। मैं सुनता गया। चिली के कवि की आखें कभी मुझ पर कभी नाजिम हिकमत पर टूटती-टकराती रहीं और तुर्की कवि का वेग उसी अनवरत रूप में बना रहा। १५ मिनट बीते, फिर ३०, फिर ४५

मिनट। अधिवेशन काम का फिर से आरम्भ हो गया था पर कवि निरंतर मधुवर्षा करता जा रहा था। जब ४५ मिनट बीत चुके तब कहीं कवि रुका और उसने कहा—"अब तुम बोलो।" "मैं क्या बोलूँ?" मैंने कहा, "बीच में कई बार जो कहने की कोशिश की थी बस वही मुझे कहना है कि मैं फ्रेंच नहीं जानता।" नाज़िम ज़ोर से हँस पड़ा, मैं भी, चिली का कवि भी, उत्सुकता से नाज़िम की बात सुनते कुछ अटके हुए सम्मेलन के प्रतिनिधि भी। चिली के कवि दुभाषिये का काम करने आये थे, पर उनको अर्थ करने का मौका न मिला। कवि ने हँसते हुए पूछा—"फिर पहले क्यों न कहा?" पर मैं कहता कैसे, जब सारा रोक के बेच में सुनना पड़ा था।

चीर खिंचती जाती, वे श्रावस्त होती द्रौपदी की आवाज हैं, जिसके अभिशाप ने कितनी ही वार महाभारत में आततायियों को, अस्मत लूटने वालों को बरबाद कर दिया।

नरेश, मानवता की कराह की आवाज मुल्की लिबास नहीं रखती। देश विदेश की सीमाएं उसे नहीं रोक पातीं। जगन-पहाड़, सात समुन्दर लांघ हमारे दिलों को वह झकझोरती है और हमारी छाती राहवेदना में कराह उठती है, कुछ कर गुजरने को मजबूर कर देती है। जुल्म का साया उठेगा, मेरे दोस्त, जैसे जलियांवाले बाग और पंजाब से 'रौलेट एक्ट' का साया उठा। हस्तियां जो आज इन्सानियत का गला घोट रही हैं जेर होकर रहेंगी और इन्सान अपनी विरासत का सही मालिक होगा, उस दिन, जो अब ज्यादा दूर नहीं।

श्री नरेश मेहता,
आल इण्डिया रेडियो,

तुम्हारा
भगवतशरण

भारी थीं, आवाज़ें जो माइक से निकल-निकल वातावरण में पसर रही थीं, कानों पर टकरा रही थीं। सारे प्रस्ताव एक-एक कर आते गये, निर्विरोध पास होते गये। कितनी तमन्ना थी उनमें, कितनी साधें थीं, कितना दर्द था, कितना ओज था, कितना विश्वास था, कितनी आशा थी!

कोरिया की कुचली मानवता, जापान का मरणोन्मुख पौरुष, दलित राष्ट्रों का संघर्ष, आर्थिक और सांस्कृतिक रिपोर्टें, शान्ति और युद्ध-विरोधी व्रत, संसार की जनता से अपील, आज सारे प्रस्ताव अविरोध स्वीकृत हुए। ऐसा नहीं कि विरोध करने का अवसर न दिया जाता था, विरोध होते नहीं थे, पर निश्चय विरोधी को सुनकर उन पर विचार किया जाता था, आवश्यक परिवर्तन कर, विरोधी को शान्ति के [illegible] को समझाकर कायल किया जाता था। उसके कायल हो जाने के बाद ही फिर प्रस्ताव प्रस्तुत होता था। इतना सद्भाव, इतना भाईचारा, लक्ष्य तक पहुँचने के लिये इतनी तत्परता और कहीं न देखी थी। रात सहसा गुजर गई। अध्यक्ष ने जैसे ही कार्य समाप्त होने की घोषणा की, [illegible], बालक बालिकाएँ, दोनों ओर से लता-वन्दन में [illegible] देवदूतों की तरह दिव्य चमन से उतर आवे।

ठीक तभी वाद्य का स्वर गगन में गूंज उठा। सहसा नजरें जो पीछे घूमीं तो देखते हैं कि सभाभवन के पीछे का पर्दा खिंच गया है और सकड़ों गायकों का आरकेस्ट्रा संगीत तरंगित कर रहा है। वाद्य रुका, फिर लोक गायक का स्वर लहराने लगा। क्षितीश बोस ने तभी बंगला के लोक-गीतों की भैरवी फूंकी। हवा में हल्की सिहरन थी जो बाहर आते ही वक्ष में लगी और भली लगी। पूरब का सूरज शान्ति और ज्ञान, उत्साह और आशा के रथ पर चढ़ा। दूर से ही अपनी किरणों की आभा से क्षितिज भेद कर हमारी दुनिया पर छिटका चला था।

दोपहर के बाद करीब डेढ़ बजे म्यूज़ियम पैलेस के सामने मैदान में एक बड़ा समारोह हुआ। चीन के नेता, शान्ति-समिति के नेता, संसार की शान्ति प्रेमी जनता के प्रतिनिधि वहां खड़े हुए। पीकिंग की जनता अपनी सारी अल्पमतीय जातियों के साथ नीचे के मैदान में दोनों ओर जा खड़ी हुई। एक के बाद एक, अनेक नेता बोले। उन्होंने शान्ति सम्मेलन का संदेश पीकिंग की शान्ति प्रिय जनता को सुनाया। जनता को सम्मेलन की कार्यवाही का विवरण सुनाना था। जनता इसी अर्थ से वहां आई थी। और जनता की विजय अद्भुत थी। बौद्ध और ईसाई, मुसलमान और चीनी, मंगोल, तुर्क और तातार, तिब्बती, देशी-विदेशी सभी लोग शामिल थे। दोनों ओर की शिष्ट भीड़ के बीच एक प्रकार की सफेदी अक्षरों की आकार-सी बन गई थी। पूछा, वह क्या कोई चीनी लिखावट है? उत्तर मिला—हां, 'होपिंगवान-से'—शान्ति अमर हो! और यह लिखावट मुसलमानों की उन सफेद टोपियों से प्रस्तुत हुई थी जो उस जाति के लोग पहने सविनय खड़े थे।

इस प्रकार का शिष्ट समारोह, लगा, केवल चीनी ही कर सकते हैं।

दिन में ही शाम की दावत का निमंत्रण कमरे में आ पहुंचा था। साढ़े नौ बजे सुनियातसेन पार्क में, म्युनिसिपल भवन में पीकिंग के मेयर

की ओर से दावत थी। गये।

पर राह जिससे होकर दावत में शरीक हुए, वह कभी न भूलेगी। ५ से १० जिस्मों की गहराई लगातार मील-भर—१०,००० व्यक्ति, बच्चे और नौजवान चेहरे, जैसे अभी-अभी पीली जवानी में घुले हों, फूल-से चेहरे जैसे दुनिया में कहीं और देखने को नहीं मिलते और २०,००० हाथ जिनमें से हरएक प्यार से बढ़ा हुआ हमें छूने की हमारे हाथ दबाने की कोशिश करता। दावत के भवन तक पहुंचते-पहुंचते जैसे लगा, हाथ मिलाते-मिलाते कन्धों से बांहें उतर जायेंगी और "शान्ति चिरजीवी हो!" की आवाज़ दिशाओं को गुंजाये द रही थी। दुनिया के इतने मुल्क देखे, घूमा, इतने उत्सव देखे, पर मानवता की इतनी भोली अभिव्यंजना, इतना उत्साह, दूसरों के प्रति इतना सौजन्य, आतिथ्य की इतनी लगन और कहीं न देखी। सभी देशों की अलग-अलग मेज़ें लगी थीं जो खाद्य पदार्थों से, पेयों से भरी जा रही थीं।

उसके प्रेम की परिधि कितनी व्यापक है। किन्तु अभागा मनुष्य दूसरों के स्वार्थों के वशीभूत यह नहीं जान पाता, अपनी अनन्त वायु का सभोग नहीं कर पाता।

अभी हाल उस दिन न्यूयार्क में नये साल की पिछली रात का समारोह देखा था। कितना फूहड़ था वह। लोग गालियां दे रहे थे, गन्दे गाने गा रहे थे। मुह में शराब भर उसी भीड़ के ऊपर कुल्ले कर रहे थे और जाने क्या-क्या कह रहे थे। सुबह के पर्चों में अमेरिका की उस रात्रि समारोह में कुचले अभागों की सख्या, पियक्कड मोटर-ड्राइवरों की चोट से मरे हुओं की, हजारों में छपी। उसके विरुद्ध यह भीड़ कितनी सयत थी। एक दूसरे के प्रति लोगों का कितना ख्याल था। उत्साह सयम की रेखायें कभी पार नहीं कर पाता था।

लहराती तरुण पायनियरों की कतारों के बीच से लोग नाचते, गाते, हँसते बसों तक पहुँचे, म भी उनमें था। बस हमें ले ओप्रा हाउस की ओर दौड़ पड़ी।

रगमच की शोभा निराली थी, जैसे चीनी रगमच की हुआ करती है। अनेक दृश्य एक के बाद एक आने लगे। अनोखे सँवारे दृश्य हम देखते रह गये। पीकिंग के ओप्रा का हमारे लिये अन्तिम प्रदर्शन था।

दिन की सारी थकान उन दृश्यों ने मिटा दी।

पर थकान भी कुछ थोड़ी न थी। सोचो जरा, कल रात से ही अब तक लगातार कितना अनवरत कार्यक्रम था—पिछली रात की बैठक सुबह तक, दिन में पैलेस म्यूजियम का समारोह, शाम की दावत, रात का ओप्रा। कपड़े जैसे-तैसे फेंक बिस्तर में जा घुसा और ५ घटे की अलभ्य नींद सोया।

शान्ति सम्मेलन समाप्त हो चुका। अब घर आने की उतावली है। कल शघाई जाना है, दो दिन बाद कान्तोन, फिर हांगकांग और कलकत्ता। तुम लोगों की बड़ी याद आ रही है। अब तक कार्य की

व्यस्तता का नशा-सा चढ़ा हुआ था, उसके उतरते ही घर की सुध आई। यद्यपि जानता हूँ आराम वहां भी न मिलेगा, क्योंकि बहुत कुछ करना है। चीन के सम्बन्ध में लिखना भी बहुत है, चीन की नारी की शपथ, करना भी बहुत कुछ है।

कुमारी पद्मा उपाध्याय,
प्रिंसिपल,
ए॰ के॰ पी॰ इन्टर कालेज,
खुर्जा। (उत्तर प्रदेश)

तुम्हारा
नम्मा

पीकिंग,
१५ अक्तूबर, १६५२

प्रिय शकुन्,

पिलानी से ६००० मील दूर पिकिंग से, १०,००० फीट ऊँचे आसमान से लिख रहा हूँ। हवाई जहाज अनवरत पर मारता चला जा रहा है। कानो के पर्दे उसकी घरघराहट से फटे जा रहे हैं। अभी-अभी पीकिंग छोडा है और तुम्हारी याद आई, सो लिखने बैठ गया। चलना कल ही था, क्योकि परसो ही शान्ति-सम्मेलन खत्म हो गया था और स्वदेश जाने वाले अनेक मित्र साथ चलने को राजी हो गये थे, पर कल सुबह बादल घिर आये थे आसमान काला होकर जैसे नीचे झुक पडा था और जहाज का उडना खतरे से खाली न था। शघाई जाना आज के लिए स्थगित कर दिया गया। हमारा सामान कल सुबह ही कान्तोन रेलगाडी से भेज दिया गया इसलिए कि जहाज का भार कहीं ज्यादा न हो जाय। और शघाई से कान्तोन जाना भी तो है क्योकि कान्तोन से ही हागकाग जाने की राह है।

अभी-अभी पीकिंग छोडा है, शघाईकी राह में हूँ अतीत और वर्त्तमान के बीच। पीकिंग ऐतिहासिक अतीत का महान् प्रतीक है। सुगो का, हानो का, मचुओं का, मिगो का, गरज कि उन सबका जिन्होने चीन की क्वारी जमीन जोती है और पीकिंग की धरा को रक्त और प्यार से सींचा है। शघाई देश के उन दुश्मनो का इधर सालो क्रीडास्थल रहा है जिन्होंने अमेरिका और यूरोप के व्यस्त जीवन से ऊब बारबार वहाँ शरण ली है और बार-बार उसकी जमीन को बेपर्दा किया है, उसकी गगा

सरीखी पवित्र बहू-बेटियों की लाज लूटी है जहाँ के मर्दों को मजबूर हो अपना गौरव बेचना पड़ा है और जहाँ की इमारतों ने पश्चिम का बाना पहिना है। पाप का अजदहा जहाँ संसार के घिनौने से घिनौने कोनों से हटकर कुंडली मार बैठा, उसी शघाई की ओर हमारा जहाज पंख मारता उड़ा जा रहा है। उसकी गति बेअंदाज है, पर मेरे मन की गति से अधिक नहीं। उन्चासों हवाएँ स्तब्ध हैं, बादलों के समूह दूर नीचे विचरते हुए दीख रहे हैं। कुछ सरसर उड़ रहे हैं, कुछ धवल गायों की तरह जैसे नीचे की हरियाली देख मचल पड़ते हैं। और इनके बीच से जब कभी नजर उस हरियाली तक पहुँच पाती है, जो जमीन पर बिछी हुई है, जो पहाड़ों की घाटियों तक सटी हुई सी चढ़ती चली गई है, तो अहसास होता है कि प्रकृति के जादूगर ने मोटे, गुदगुदे कालीन बिछा दिये हैं। और जहाँ तहाँ तो हरे खेतों का कुछ ऐसा प्रसार है कि लाल हरी चौकियाँ जड़ी हो गई हैं, जैसे बीरबहूटियों के अनन्त मैदान रख गए हों।

बार विनीत व्यवहार से उसे मना कर दिया है। यद्यपि चीनी चाय का जादू दिल्ली से ही दिलोदिमाग़ पर छाया हुआ है। चीनी चाय, शकुन, देवताओं को भी दुर्लभ है। अद्‌भुत पेय है वह, जिसकी भीनी सुगन्ध उसके मादक द्रव्यों से कहीं ऊपर उठ जाती है।

चाय की सूखी पत्तियों में जूही के सूखे फूल गरम पानी में उबल कर अपनी सुरभि निरन्तर फेंकते रहते हैं। उनकी गमक चाय की हविस मिट जाने पर भी देर तक रोम-रोम पर छाई रहती है। पर नीचे की वनस्थली का नयनाभिराम दृश्य कुछ इतना आकर्षक था कि चीनी चाय की मनोरम गंध भी उसके सामने फीकी पड़ गई। मैंने उसे फेर दिया, उन रंग-बिरंगी टाफियों को भी, उन सुखाई लीचियों को भी जो चीन के किसी मौसम में कम नहीं होतीं।

नीचे से आँखें फेर लेता हूँ। दूर तक फैला सफेद रुई का-सा बादलों का मैदान परे हो जाता है, आँखों की नीलिमा में मर्त्युलोक की हरियाली लय हो चुकी है, पर स्मृति में पीकिंग की नई दुनिया लहराने लगी है। उसकी ऊँची बुर्जियों के कगूरे हमारे जहाज़ की आदमक़द ऊँचाई को भेद जैसे अपनी परिधि में खड़े हैं। पीकिंग के सम्राटों के महल, चीनी मन्दिरों के अभिराम कलश, उनकी ऊँची छतों के लटके उसारे, मानववर्जित रनिवासों की नीली खपड़ैलें, बार-बार आँखों की राह मन पर उतर आती हैं। पर यह उस अतीत का रूप है जिसके भीतर-बाहर, ऊपर-नीचे, वर्तमान का नया जीवन पेंग मारने लगा है। आज अगर एक शब्द में मुझसे पूछो कि पीकिंग के वर्त्तमान जीवन को प्रतीकत आलोकित करने वाला चिह्न क्या है, तो बस एक ही शब्द में उत्तर दूँगा—पीकिंग की नारी। और नारी वह लिजलिजी, घिनौनी, चमकते रेशम की गाउन पहने नहीं, जिसके पैर लँगड़ी साम्राज्ञी ने कभी लोहे के जूतों से जकड़ दिये थे, बल्कि नारी ऐसी जो आज बवंडर पर चढ़ तूफान की राह बनाती है। भूल नहीं सकता उस जवाब को जो शुचिंग के रेलवे स्टेशन पर मजदूर लड़की ने दिया था—अगर फारमोसा से च्यांग-

गाथी की वह बात कितनी सच लगती है कि हमारी तरुणियों का प्रयास आधे दर्जन रोमियों की जूलियट बनने की ओर है। चीन की वर्त्तमान नारी के पक्ष में यह वक्तव्य नितान्त असत्य होगा।

परसों की शाम बड़े मज़े में बीती। पीकिंग के मेयर ने शान्ति-सम्मेलन के प्रतिनिधियों और अन्य हज़ारों मेहमानों को दावत दी थी। मेज़ें खाद्य पदार्थों और पेयों से झुकी जा रही थीं। यद्यपि खाने में तुम-सा अनाड़ी भोज की उस सपदा का राज क्या जान सकता था, पर मेरा इशारा, बेटी, भोज की उस खाद्य सामग्री या उसके पेयों की ओर कोई नहीं है। उस जीवन की ओर है जो यम के विकराल भैंसे के पैर अपनी ताज़गी से लड़खड़ा दे। भोज तक पहुँचने की राह उस भीड़ के बीच से थी जिसके स्वागत शब्द हमें शान्ति की स्थापना के लिए पुकार रहे थे। जिसके गान की आवाज़ हमारे थके, निरन्तर प्रयत्नशील शान्ति प्रयासों को शक्ति प्रदान कर रहे थे। सोचो, तीन मील लम्बी चीनी लड़के-लड़कियों की उस गहरी कतार को जिसमें १०,००० लड़कियों का योग शामिल था। १०,००० लड़कियाँ जिनके खिले कपोलों की मर्यादा कमल और गुलाब को लजाती थी, हमारे लिज-लिजे विचारों को अपनी पवित्रता के स्पर्श से पुनीत करती थीं। 'कुमारसभव' में कालिदास ने रूप की एक व्याख्या की है, उसके प्रभाव का निचोड़ सोपिवद्ध कर दिया है—वह रूप क्या जो अपने दर्शन से देखने वाले में पवित्रता न जगाये? रूप कैसा जिससे कल्याण चरितार्थ न हो? कालिदास की वह व्याख्या रूप के पावन प्रभाव के रूप में आज चीनी नारी के अगाग में जा बसी है। अपने देश की नारी कब पच्छिम के अहितकर स्पर्श से मुक्त होगी? कब वह समझेगी कि सचेत, सलोने अगों के प्रभाव से कहीं गहरा असर स्वस्थ, स्फूर्ति और ताज़गी के जादू का होता है?

दूर नीले आसमान का मस्तक समुन्दर के नीले आंचल को चूम रहा है। प्रशान्तसागर की हल्की उर्मियाँ धीरे-धीरे बिखर-पसर रही हैं। शंघाई के विशाल भवनों की चोटियाँ अब भी बहुत नीचे हैं, पर जहाज़

को जो उतर चला है, उसकी छाया में पहुंचते देर न लगेगी।

लिखना अभी और है, पर इस वक्त बन्द करता हूं। उतरना होगा, फिर होटल, लंच, कुछ आराम और सफाई के नए जगत का नये मानस से निरीक्षण। और तभी रात में फिर होटल लौटकर भोजन के उपरान्त लिखूंगा।

घण्टों बाद, रात की तनहाई में लिख रहा हूं। इतनी दौड़-धूप के बाद चाहिए था सो जाना, पर कभी कभी सूने को आदमी कृत्रिम स्वरों से भरता है। स्मृतियां जब उमड़ती हैं तब दूरी सिकुड़ जाती है और दूर का वतन पास आ जाता है। 'पिगनाग' नाम के इस होटल के मेरे कमरे में इतनी दूरी के बावजूद जैसे हमारा सारा वतन और पिलानी सिमट कर आ गई है। होटल का नौकर कब का आवश्यकतायें पूछ चला गया है, साथ के राहगीर शायद अपने कमरों में, दिन के थके, खर्राटे भर रहे हैं। शायद उनमें से कई मेरी ही तरह दूर की निकटता को निकट की दूरी बना रहे हैं। शायद उनकी पलकों पर भी नींद मंडराती है, पर नींद-वांछित पलकें यादों न ढलती हैं।

का यह पहला अवसर निश्चय आखिरी भी, पर यह क्या कुछ है, शकुन, जो हमें बेबस कर देता है, मिलते आनन्द का आंसू बिछुड़ते कराह उत्पन्न कर देता है? गांधी जी ने उसे कभी 'मिल्क आफ ह्यूमन टेन्डरनेस' कहा था शायद, वही मिल्क आफ ह्यूमन टेन्डरनेस, जिसके लिए परिचय की आवश्यकता नहीं होती और मन की नर्मी, जो वज्र को छेद देने का पैनापन रखती है, दर्शन मात्र से विफल तरल हो बह चलती है। फूलों के गुच्छे एक हाथ में लिए, दूसरे से बालिका का हाथ पकड़े, कतार बनाये मोटरों तक पहुंचे। मोटरें किंगकांग होटल की ओर दौड़ चलीं।

किंगकांग, जिसे चिंगचांग भी कहते हैं, संसार का विख्यात होटल है। नाम इसका कभी का सुन चुका था। अनेक-अनेक कहानियां इसके सम्बन्ध की पढ़ी और सुनी थीं। आज मोटर से निकल जो उसके सामने खड़ा हुआ तो विश्वास न हो कि यह वही जगत्प्रसिद्ध किंगकांग है। नारीत्व के पतन का मूर्तिमान रूप, विलास के घिनौनेपन का प्रतीक यह किंगकांग आज आवारों की घिनौनी हविस से कितनी दूर है, उसकी आज की मर्यादा पहले की कुरूपता से कितनी भिन्न! कई मंजिल ऊपर लिफ्ट के सहारे अपनी मंजिल के लॉज में पहुंचा। मेरा कमरा मुझे दिखा दिया गया। दोनों ओर के कमरों की कतार के सिरे पर मेरा कमरा था, चमकता हुआ साफ, जिसमें एक ओर दीवार के भीतर कपड़े रखने के लिए आलमारी आदि से युक्त एक संकरी कोठरी और एक खासा बड़ा गुसलखाना। कमरे में कई खिड़कियां हैं जिनसे दूर के मकानों की बुर्जियां और छतें साफ दीखती हैं और वह शून्य आकाश भी जिसकी गहराइयों में इन तल्लों-बुर्जियों की अनन्त-अनन्त ऊंचाइयां विलीन हो सकती हैं।

मेज पर कुछ फल रखे हैं, सूखे मेवे, लाल-हरे केले, कुछ टाफी और एक बड़ा-सा थरमस गरम पानी से भरा? पास ही कुछ सुनहली रिक़ाबियां जिन्हें चाय की प्यालियों-सा बरत सकते हैं।

किंगकांग पहुंचते ही हाथ-मुंह धोकर लंच के लिए जाना पड़ा। लंच

शंघाई के मेयर का था। उसमें अनेक उच्चपदस्थ सरकारी अफसर भी थे। कुछ शिक्षा विभाग के, कुछ युनिवर्सिटी के। लंच के बाद ही बाहर निकले, शहर के कुछ विशिष्ट स्थान देखे। कुछ कल-कारखाने, कुछ शहीदों की क़ब्रें, कुछ विशाल दुकानें।

शाम हो गई। होटल में डिनर और चीनी चाय। और उसके बाद चीनी ड्रामा का एक हल्का-अशत प्रदर्शन, कलाबाजों के अचरज भरे कारनामे, छड़ी की पिन-सी महीन नोक पर अनेक-अनेक प्लेटों के निरन्तर नाचने के दृश्य और ऐसे अनेक दृश्य जिनका वर्णन बगैर देखे इस दूरी से तुम्हारे लिए कोई अर्थ न रखेगा, केवल बचपने की सी इस मेरी उत्सुकता का उपहास करेगा।

और फिर यह खत जिसे अब बन्द करना है, क्योंकि कल का प्रोग्राम तड़के शुरू होगा और यह 'कल' चीन का है, जिसके आज और कल के बीच गजब का फासला है, क्योंकि मिनट-मिनट पर होते परिवर्तनों की अटूट शृंखला उस आज और कल के बीच दौड़ती है। सो आज खत बन्द करता हूं।

बहुत-बहुत प्यार। जल्दी ही लौटूंगा, शायद अगले सप्ताह में, यद्यपि पिजाना सीधा न आ सकूंगा।

शघाई,
१० अक्तूबर, १९५२

प्रियवर,

कल शघाई पहुँचा। पीकिंग का शान्ति सम्मेलन खत्म हो गया। युद्ध-विताड़ित ससार को शान्ति का सन्देश सुनाने उसके प्रतिनिधि कल ही चल पड़े थे। कहना न होगा कि कुछ लोगो को छोड ससार की समूची जनता युद्ध विरोधी है। उसने अपने स्कूलो और चर्चो को, मन्दिरो और मस्जिदो को, अस्पतालो, धर्मशालाओ को बमो की चोट से धराशायी होते देखा है। टूटे-गिरते विशाल भवनो से मानव कराह उठा है। दिगत में उसकी कराह भर गई है। दिलवालो के दिल हिल गये हैं, पर सत्तावादियो की पेशानी पर बल नहीं पडा है। फिर भी वह कराह बेकार नहीं गई है। जमीन के इस कोने से उस कोने तक लोगो ने सकल्प किये है कि हिरोशिमा और नागासकी के मृत्युताडव फिर न होगे।

पर आज जो आपको लिखने बैठा, वह शान्ति सम्मेलन या उसके युद्ध विरोधी प्रचार से सम्बन्ध नहीं रखता। उससे रखता है जो आपका जीवन है, कर्मठता का इष्ट है। आज मैंने चीनी न्यायालय में प्रस्तुत एक अभियोग पर विचार होते देखा और उससे इतना प्रभावित हुआ कि आपको लिखे बगैर न रह सका। वैसे याद आपकी इस मेरी चीन की मुसाफिरी में कई बार आई, और सोचा भी एकआध बार कि आपको लिखूं, पर सकल्प आज ही पूरा कर सका। जब जो देखा उसे टाल सकना असम्भव हो गया। लिख इसलिए और रहा हूँ कि जानता हूँ कि इस न्याय सम्बन्धी घटना में भारतीय न्याय के अशत विधाता होने के

जो हमें अपनी अदालतों का तुजुर्बा है, उससे हम अदालत या सरकारी इमारतों, दफ्तरों का बगैर हथियारबन्द सतरी के होना कयास में नहीं ला सकते। अदालत में घुसते तो हमारे ऊपर एक अजीब-सी दहशत छा जाती है। पर यहाँ उस दहशत का कहीं नाम तक न था और हम चुपचाप सीढ़ियाँ चढ़ उस बड़े हाल में दाखिल हो गये, जहाँ करीब दो सौ औरत-मर्द बेंचों पर चुपचाप बैठे मेजिस्ट्रेट की ओर एक टक देख रहे थे। मेजिस्ट्रेट प्राय ३० के आसपास का युवा लगता था, गम्भीर और शान्त।

मुकदमा तलाक का था। एक व्यक्ति ने, जिसके पिता और भाई मौजूद थे, शादी की। उसकी बीबी जिन्दा थी और १२ साल की एक बच्ची। उस व्यक्ति ने बाद में एक दूसरी औरत को घर में बिठा लिया था, जो झगड़े का कारण बन गई थी। प्रकृत पत्नी ने पति के असभ्य व्यवहार के कारण विवाह-विच्छेद का प्रश्न उठाया था और वह अदालत से अपना हक़ माग रही थी। मुकदमा चल रहा था, दर्शक तन्मयता से इजलास की तरफ देख रहे थे और उपेक्षिता पत्नी बीती स्थिति का बयान अदालत के सामने कर रही थी। इजलास लम्बे-चौड़े, ऊँचे चबूतरे पर लगा हुआ था। बीच में मेजिस्ट्रेट बैठा था। उसके बायें ओर नारी सस्था की एक प्रतिनिधि और दायें अदालत का क्लर्क जो लगातार बयान का नोट लिये जा रहा था। नारी अपना अभियोग अपने आप, बगैर वकील की सहायता के सुनाये जा रही थी और मेजिस्ट्रेट शान्त मन, चुपचाप सुने जा रहा था।

नारी की आवाज बुलन्द थी, हाल में गूंज रही थी। शुद्ध कांपती-सी वह आवाज जिसका अर्थ हम समझ नहीं पा रहे थे, पर जिसका गुस्सा लोगो की खामोशी और खुद की चुनौती भरी ध्वनि से प्रकट था। दर्शकों को बादामी रग के छपे कागज बांट दिये गये थे। हमें भी, जब हम वहाँ पहुँचे, वह कागज मिला, जिसमें अभियोग का खुलासा छपा हुआ था। हमारे दुभाषिये ने जल्दी से दो-चार मिनट में मुकदमे

का विषय हमें समझा दिया। अदालत में भी किसी प्रकार का पहरा न था। हाँ, साधारण वर्दी में एक चपरासी वहाँ जरूर खड़ा देखा।

बताया गया कि औरत कह रही है कि कोई १३-१४ साल हुए जब उसके पति के साथ उसका विवाह हुआ और तभी से न केवल उसका पति उस पर अनेक प्रकार के जुल्म करता रहा है, बल्कि उसको खिलाने-पहिनाने से भी एक जमाने से उसने हाथ खींच लिया है और कि अब उसका आश्रय एक मात्र वह शख्स है जिससे उसके कई बच्चे हैं, पर जिससे उसका सम्बन्ध गैर-कानूनी है। अदालत से उसकी प्रार्थना है कि पति के साथ उसका विवाह सम्बन्ध तोड़ दिया जाय जिससे वह अपना और अपने बच्चों का इन्तजाम खुद कर सके। उसने अपने बदन पर पति की की हुई चोटों के दाग भी दिखाये जिन्हें पड़ोसी गवाहों और मुद्दई की बहन ने पहिचाना।

उसे उससे किसी प्रकार का प्रेम नहीं और उसकी पत्नी को किसी प्रकार की सहायता की आशा भी नहीं करनी चाहिये, यद्यपि समय-समय पर उसने उसको सहायता की भी है। मारने की बात गलत है। अक्ल आते ही उसने दूसरी लडकी के साथ अपना प्रेम सम्बन्ध कायम किया, जिसका सबूत ये कई बच्चे हैं जो अदालत में हाजिर हैं।

अभियुक्त के पिता ने तब अपनी गवाही दी। अपने बडे लडके की नालायकी का जिक्र किया और कहा कि सही उसके विवाह का कारण चीन के अन्य माता-पिताओ की भाति वह खुद रहा है, पर हर्गिज उससे पति की जिम्मेदारी में किसी प्रकार की कमी नहीं होती, क्योंकि अपना अधिकार मान पति अपनी पत्नी को मारता-पीटता रहा है और बालिग होने के सालो बाद तक कभी उसने अपने विवाह के विरुद्ध विचार नहीं प्रगट किये। वह स्वय उसकी पत्नी और बेटी का भरण-पोषण करता आया है। वह शर्मिन्दा है कि उसका लडका इतना गैर-जिम्मेदार रहा और उसकी पुत्रवधू को इस प्रकार कष्ट सहने पडे। गवाह और गुजरे और अभियुक्त को अन्त में अपना दोष स्वीकार करना पडा।

पर अभियुक्त न स्पष्टत प्रगट कर दिया कि पत्नी की सभाल उसके बस की नहीं। विशेषत जब उसे खुद अपनी रखैल और उसके बच्चो का इन्तजाम करना है। तलाक के पक्ष में उसने अपनी राय जाहिर कर दी और मुकदमा समाप्त हो गया।

जज साहब, न्याय की समस्याओ, उलझनो की बात मे विशेष नहीं जानता। उसका 'प्रोसीजर' तो मुझे और भी चक्कर में डाल दिया करता है। आप उसकी पेचीदगियां भली प्रकार जानते हैं, क्योंकि आपका सम्बन्ध वकील के नाते मुकदमो की पैरवी से भी रहा और अब हाईकोर्ट के जज की हैसियत से उनके फैसले से भी है। शायद इस प्रकार का न्याय आपको बच्चो के खेल-सा लगे, शायद बनैलापन-सा, पर अर्ज करूंगा कि आज के कानूनी जगल में, जहां तक अपने देश के न्याय की प्रगति को जान पाया हूं, अभियोग की छान-बीन और फैसले के बुनि-

को मजबूर नहीं करता कि आप उसकी बीबी और बच्चों की परवरिश करें, पर जाहिर है कि आपने अब तक अपने-आप उनकी देखभाल की है। क्या उम्मीद करूं कि आप उनकी देखभाल तब तक और करेंगे जब तक कि मुद्दई दूसरा पति न पा ले या खुद कहीं काम न करने लग जाय? बच्चे आपके पोते हैं और उनकी मां आपकी पुत्रवधू। ऐसा सुझाने की हिम्मत इसलिए और करता हूं कि सुना है कि आपके पास पोसलेन का कारखाना है।

पिता गद्गद् हो गया। उसने कहा—श्रीमन्, बच्चे मेरा खून हैं और इस अभागी औरत ने मेरे नालायक बेटे की जो ज्यादतियां बर्दाश्त की हैं, वह मेरे शरम की बात है। मुझे आपका सुझाव मंजूर है। मैं बाखुशी जहां तक बन पड़ेगा, उनकी हिफाजत करूंगा।

इसी बीच उसका दूसरा बेटा दौड़कर अदालत के सामने आ गया और उसने कहा कि मुझे अपने पिता की अपने-आप मंजूर की हुई पाबन्दियां स्वीकार हैं, पर मैं कह देना चाहूंगा कि यह अधिकतर सम्भव होगा जब तक हमारा कारखाना चल रहा है। अगर उसमें किसी तरह की मन्दी आई तो यह जिम्मेदारी हमारे लिए भार बन जायेगी। अदालत ने इसे नोट कर लिया।

प्रियवर, ६ बजे तक होटल लौट आया था और चाहा कि मुकदमे की सारी कार्रवाई लिख डालूं, पर शघाई की लुभावनी इमारतें अपनी ओर खींचने लगीं और उन्हें देखने निकल पड़ा। अब, जब फिगकाग के कमरे नींद में बेहोश हैं, जब वरक का खड़क जाना भी चौंका देता है, खत लिख रहा हूं। और उसे बन्द भी कर रहा हूं। आशा है आप स्वस्थ होंगे और मेरा यह ब्यौरा आपको सन्तुष्ट करेगा। स्नेह।

आपका ही
भगवतशरण

श्री चन्द्रभान अग्रवाल,
जस्टिस, इलाहाबाद हाईकोर्ट,
इलाहाबाद।

ग्रौर चीन का पौरुष उनमें डूबता-उतराता था। अफीम के आयात का यह द्वार-समुद्र महाकेन्द्र था। अफीम का धुआ शघाई के भवन कलशो को चूमता था, उसके जीवन के अतराल में घुमडता था। हजारो की तादाद में औरत के पेशेवर दलाल जना की कीमत में अपना भाग पाते थे। देश की हजारो रूपसी ललनायें नित्य शघाई में अपना शरीर वेचती थी। उनके सौरभ पर मधुप—मडराने वाला उनका खरीदार अपने आनन्द पर उतराता था। शघाई की गलियो में चोरी और डकैती का दवदवा तो वना ही रहता था, वेश्यागीरी के फलस्वरूप हत्याओ की भी कुछ कमी न थी। चीन की राजनीति इस घिनौने जीवन की गजब की सहायक थी। यूरोप के अलवेले, अमेरिका के छैले, शघाई के गृह-मन्दिरो में देवता की पूजा पाते थे। अमेरिका कोमिताग का एक मात्र सहायक था। उसके सैनिक उस शहर के नारीत्व पर शर्मनाक हल चलाते थे जैसे आज के जापान के नारीत्व पर चला रहे है। माओ की अद्भुत विजय है कि न केवल उसने उस राजनीति का अन्त कर दिया वल्कि नारी के उस आपद्ग्रस्त जीवन का भी, जिसका घटियापन विदेशो के धन का परिणाम था।

शघाई में वेश्यावृत्ति आज वन्द हो गई है, जैसे चीन के और नगरो में भी। जहां अपने देश में चकलो को नगर से वाहर वसाने के प्रयत्न नगरपालिकायें कर रही है वहां चीनियो ने उस विषवृक्ष को आमूल उखाड फेकने का सफल प्रयत्न किया है। कितना पुराना व्यवसाय यह रहा है, अश्क ? जहाँ तक इतिहासकार की मेधा जाती है, वावुल की देवी मिलित्ता के मन्दिर के और परे, काल की काली गहराइयो में—कव से नहीं नारी की इस मजबूरी का इतिहास लिखा जा रहा है ? पर उसे आज के चीन ने आखिर उखाड फेंका। तथाकथित जनतान्त्रिक देशो में वहस होती है—क्या वेश्यागिरी सहसा खत्म कर देना खतरनाक नहीं ? क्या मनोविज्ञान ऐसा करने की सलाह देता है ? क्या उस जीवन में पक जाने से नारी सामाजिक सदाचार में सकट नहीं उपस्थित कर देगी ? इस

प्रकार के अनन्त प्रश्न हमारे समाज-सेवी करते हैं, जैसे नारी का शरीर बेचना ही, उसका घृणित आत्म-समर्पण ही स्वाभाविक हो। आर्थिक परिस्थिति इस दिशा में किस हद तक जिम्मेदार है, सामाजिक कुरीतियाँ किस मात्रा तक चकलों की सहायक हैं, सामन्ती जीवन ने किस अंश तक उसे निबाहा है, यह क्या कहने की आवश्यकता होगी ?

चीन की वश्याएँ आज गौरवशाली मातायें हैं, लाजलब्ध वधुएँ हैं। तरुणों ने उन्हें अपने पौरुष की छाया दी है। आज वे खेतों पर हैं, कारखानों में हैं, स्कूलों में हैं, अस्पतालों में हैं, सेनाओं में हैं, देश और समाज की उन बेशुमार संस्थाओं में हैं, जिनके आधार पर चीन का न केवल उत्कर्ष निर्भर करता है, वरन् जिन पर उसके जीवन की आधारशिला रखी है।

का एक मात्र पेय। पर स्वयं उसने अपने लिए यह राज छिपा रखा जो चीनी चाय का अपना है, फकत अपना। उसे पीता हूँ तो रग-रग में उसकी महक कुलाच लेने लगती है।

धीरे से होस्टेस ने कहा, अब हम कान्तोन पहुचने ही वाले हैं। सो अब क्या लिखना। हवा की सर्दी कुछ नरम पड गई है। कान्तोन जिस सूबे में है उसमें हम कब के दाखिल हो चुके है। अब जहाज की गति कुछ धीमी भी हो चली है। आसमान में बादल एक नहीं, जिससे कान्तोन शहर की धुंधली रेखा अब साफ दीखने लगी है। शीघ्र जहाज नगर की बुर्जियों पर मंडराने लगेगा।

लिखना बन्द करता हूँ। शाम को फुरसत न मिलती—गांवों में जाना है—रात में ही हांगकांग के लिए चल पडना है। विदा। स्नेह, कौशल्या जी को भी। गुड्डे को प्यार।

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क',
५ खुसरो बाग रोड,
इलाहाबाद।

तुम्हारा
भगवतशरण

इसका ख्याल किये कि हम उसकी बात जरा नहीं समझ रहे हैं। उसका उत्साह, उसका औदार्य, उसकी प्रसन्नता असाधारण थी। उसके कहने का मतलब था कि एक जमाना था जब जमीन उसकी न थी और वह खेत जमींदार से लेकर जोतता बोता था। और अकाल! तब जमींदार की बेरहमी से मजबूर होकर जब वह लगान न दे पाता तब उसे बेटे-बेटी तक गिरवी रख देने पड़े थे। बेटी के गिरवी रखे जाने का मतलब क्या है, बताना न होगा। पीकिंग, शंघाई और कान्तोन के चकले, जनरलो और जमींदारों के हरम, होटलों और बन्दरगाहों के आतिथ्य उसका उत्तर देंगे। बूढ़े की आवाज में असाधारण क्षोभ था, उसकी आंखों में तापकती ज्वाला थी, उसकी बूढ़ी नसों में नई स्फूर्ति उचक रही थी। उसने और कहा, निचोड में—कि हम जानते हैं, हमारा अन्न कहाँ से आता है, यानी हमारी जमीन से, हम जानते हैं कि यह आमदनी स्थायी है, और हम जानते हैं कि अभी यह केवल आरम्भ है। यह कहते-कहते बूढ़े की आंखों में नई सरकार के प्रति कृतज्ञता के आंसू भर आए। हम कान्तोन लौटे।

पीकिंग की ट्रेन हमारा असबाब लिए आ पहुंची थी। असबाब दूसरी गाडी में, जो हमें लेकर शुनचिग जाने वाली थी, रखा जा चुका था और वह गाडी १२ बजे रात को छूटने वाली थी।

भोजन और विदाई के बाद हम गाडी में बैठे। सोने का निहायत अच्छा इन्तजाम था। यूरोप की गाड़ियों में जैसे 'स्लीपर' होते हैं, वैसे ही पर्दे पडे हुए कमरे थे, जिनमें बर्थों पर सोने का इन्तजाम था। कंबल चादर, तकिये पडे हुए थे। आराम से हम सोये और जो सुबह जगे तो शुनचिग आ पहुंचा था। चाय ली और चीन की सरहद पार कर गये। सरहद जो नई और पुरानी दुनिया के बीच थी। हम ललचाई आंखों से देर तक सीमा पर खडे रहे, जब तक कि अंग्रेज पासपोर्ट-निरीक्षक ने हमारे पासपोर्ट लौटा न दिए, देखते रहे, नई दुनिया का जादू हमारी आंखों में नाचता रहा। अभी हम सरहद पर ही खडे थे और लगता था जैसे सपना

भी थी थी। डा० जसीम और मैं उनके साथ चल पड़े। दूर समुन्दर के किनारे पहाड़ियों की छाया में चलते चले गए। नील अम्बर के नीचे नीले समुन्दर का, इस सारे समुन्दर का, वेलाहीन वैभव और उसके अंचल में हरी हरी घास से ढकी भूमि और उस हरियाली को बीच से चीरती हुई जाती सांप सी काली सड़क। थोड़ी-थोड़ी दूर पर गांव, नए पुराने तौर तरीकों के गांव और थोड़ी-थोड़ी दूर पर आकर्षक लानों से सजे रेस्तरां और होटल। जापान की चहल पहल, चाय की चुस्कियां, कामिनियों की चुहल, हवा की छेड़छाड़, अकेले होटलों में समूचे हांगकांग का अपना जीवन।

चलते चले गए, प्राय २० मील दूर। वहां एक मन्दिर था, चीनी बौद्ध मन्दिर। दर्शन किए, लंच किया, वांग साहब के उस समुद्रवर्ती 'विश्राम' में लौटे। फल और बिस्कुट रखे थे, चाय आई, पी, और चल पड़े।

वांग साहब की मोटर सड़क पर रेंगती चली। मशहूर होटलों के सामने ठहरती, जब हम उतरकर जरा घूम लेते, जरा दम ले लेते, जरा सुन्दर शक्लों के खुमारी भरे चेहरों पर एक नजर डाल लेते। निःसन्देह दाहिने बायें के दृश्य अभिराम ने, इटालियन 'रिवियेरा' की याद बर-बस ला दी। होटल पहुंचे तो शाम हो आई थी। डिनर और शैया।

आज सुबह जो उठा तो एकआध पत्र-रिपोर्टर आये, उनसे बात की और स्टीमर से उस पार हांगकांग के बाजार में जा पहुंचा। कौलून होटल कौलून में है न—हांगकांग के इस पार चीनी जमीन पर, जहां से हांग-कांग १० मिनट में जहाज पहुंच जाते हैं। कुछ चीनी बर्तन खरीदे, थरमस वगैरह, और लौट पड़ा। साथ एक मित्र थे, वांग साहब के दिये हुए चीनी मित्र जो सामान लेकर मेरे होटल चले गये और मैं देर तक कौलून वाले तट पर घूमता रहा। दोपहर के समय लोग तफरीह के लिये तट पर नहीं आते, मेरी तरह के अजनबी ही घूमा करते हैं। फिर भी लोग थे वहां, निठल्ले लोग, जिन्हें शायद काम नहीं पर लकदक बने रहने के लिये जिनके पास काफी पैसा होता है। वह पैसा कहां से आता

है, यही जानें। पर लोग जानते हैं, क्योंकि किसी ने बताया था कि जब-तक अमरीकी मांझी हांगकांग में अपनी छावनी बनाये हुए हैं, जब तक कोरिया का युद्ध चल रहा है, जब तक फारमोसा का अचलगढ़ कायम है, इन्हें पैसे की कमी नहीं हुई। इनका रोजगार चलता रहेगा और उन अमरीकी नाविकों की आँखें अब दक्षिण पूर्व की तरफ भी लगी हैं—हिन्द-चीन की ओर, वियतनाम की ओर, लाओस की ओर, बर्मा की ओर।

कलकत्ता,
२३ अक्तूबर, १९५२

प्रिय अन्नी,

चीन से लौट आया हूँ। जहाज से उतरते ही न लिख सका। और जब से आया हूँ लगातार व्याख्यानो का तांता लगा हुआ है। धनी और गरीब उस जादू के देश के कैफियत सहानुभूति से सुनते हैं। खूब सुनते हैं। कहना भी बहुत है। पर कहना वही है जो उनके गले से उतर सके, क्योंकि, जानती हो, सच्चाई जादू से कहीं ज्यादा अविश्वसनीय हो उठती है जब-तब, और चाहे हम पुराणो की कल्पनायें हजम कर लें, सच्चाई को गले से नहीं उतार पाते।

जाते हुए तुम्हें लिखा था, लौटकर फिर लिख रहा हूँ। जमीन का विस्तार वही है, आसमान का वही चंदोवा है, हवा भी वही है, धूप-चांदनी भी वही, पर दुनिया बदल गई है। यह दूसरी दुनिया है जहां आया हूँ, वह दूसरी थी जिसे छोडा है। आदमी वहां अपने सपने सही कर रहे हैं, यहां आज भी वे गहरी नींद में हैं। पुरानी सस्कृति, गुजलक भरते, अजदहे की कुडलियो में लिपटी उसकी काया, उठते-गिरते साम्राज्य, विदेशियो के दांव-पेंच, कोमिनतांग की बुजदिली, मोक्ष, आजादी, गिरती-पडती बेरौनक दुनिया के नयनो में नये प्राण—वह पीला दैत्य, जिसे नैपोलियन ने कहा था, न छेडो, नहीं वह उठ बैठेगा, दिगन्त में छा जायगा, फिर सम्हाले न सम्हलेगा। पीला दैत्य उठ खडा हुआ है, पृथ्वी पर पैर टिकाये, माथे से आसमान टेके।

और हमारी मस्ती ऐसी कि कानो पर जूं न रेंगती। कलकत्ते के

अखबारों में झूठ का एक तूफान आ गया है। कोशिश है कि कैसे उस प्रकाश को ढक दें जिसकी किरणें हमारे अन्धकार को भेदने लगी हैं, कि किस तरह उसे झूठ पर दें जो चीन के जर्रे जर्रे को रोशन कर रहा है। उत्साह की इतनी हीनता, अपनी अकमण्यता में इतना विश्वास, वर्तमान स्थिति को बनाए रखने का इतना प्रयत्न, जितना यहाँ देखा जाता और कहीं नहीं। उत्साह भंग हो जाता है, जीवन हार जाता है, प्रमाद हमारी नस-नस में उतर आता है। क्या होगा इस देश का, इसकी मासूम जनता का, इसके बेमानी घमण्ड का ?

जो उस पहाड़ी निर्जनता में विशेष भय का सचार करती है। अत्यन्त प्राचीन परम्परा और आज के बीच बनी वह दीवार जमाने की बदलती तस्वीर को जैसे देख रही है। अशोक के शासन-काल के आस-पास ही उसे क्रूर सम्राट चिन शिह हुआग ती ने २१८ ई० पू० बनवाया था। कुविख्यात सम्राट हुआंग ती ने विद्वानो का दमन कर और उनकी पुस्तको को जला कर इतिहास में अपना नाम काला किया था। परन्तु महान् दीवार का निर्माण उसकी अक्षय कीर्ति का साधक हुआ। चीन का महादेश साधारणत पश्चिम में तिब्बत के ऊचे पर्वतो द्वारा सुरक्षित था, दक्षिण में याग्त्सी द्वारा, पूरब में सागर द्वारा। परन्तु उत्तर अरक्षित था। उस दिशा में चीन साहसिक सामरिको की क्रूरता का शिकार था। चीन के इस खुले द्वार का लाभ उत्तर के उन बर्बरो ने उठाया जो सहसा देश के समृद्ध मैदानो में उतर आते, उनके नगरो को बर्बाद कर देते, उनके असहाय निवासियो को तलवार के घाट उतार देते। हुआग ती ने, जो अब रेगिस्तान से समुद्र तक का स्वामी था, शत्रुओ के सामने देश की रक्षा के लिये दीवार खड़ी कर देने का सकल्प किया। उसके आदेश से उसके प्रसिद्ध सेनापति मेंग तिएन ने दीवार खड़ी कर दी। दस लाख आदमी लगे। कुछ राज के रूप में, कुछ रक्षको के रूप में, शेष सामान्य मजदूरो के रूप में। फकत इनसान की ताकत ने दस साल के भीतर वह जादू की दीवार खड़ी कर दी। परन्तु लाखो मजदूर दीवार खड़ी होने के पहले ही उसकी नींव में दरगोर हो गए। उनसे कहीं ज्यादा तादाद में वे थे जो घायल होकर जिन्दगी भर के लिए बेकार हो गए। इसलिये नया चीन, जैसे पुराने चीन के भी कुछ विचारवान लोग, महान् दीवार को अत्याचार और क्रूरता का प्रतीक मानते हैं। वह विशाल इमारत निश्चय असाधारण है परन्तु सामन्ती सदियो के दौरान में कितनी ही इमारतें ऐसी बनी है जिन्हे बनाने वाले हाथ बेकार हो गए है, बेकार कर दिये गए है। जो भी हो महान् दीवार इतनी लम्बी-चौड़ी है कि वह देश का प्राकृतिक, भौगोलिक सीमा बन

गई है। चीन के प्राय. सारी उत्तरी सीमा को घेरती हुई वह अटूट रेखा में दूर के पश्चिमी कानसू के रेगिस्तान से पूर्व के प्रशान्त महासागर तक जा पहुँचती है। जितनी सामग्री उसमें लगी है, जानकारो का कहना है, यदि उससे इक्वेटर पर पृथ्वी को भी घेरा जाय तो वह ८ फुट ऊँची ३ फुट मोटी वेष्टन के रूप में समूची पृथ्वी को घेर लेगी!

पहरे की बुर्जियो में बराबर फौज रहती थी जो अद्‌भुत सिग्नल द्वारा बहुत कम समय में, एक बुर्ज से दूसरे बुर्ज को, सैकडो मील दूर खबर भेज देती थी और साम्राज्य की विपुल सेना दीवार के नीचे आकर उन बर्बरो के विरुद्ध सन्नद्ध हो जाती जो रन्ध्र की खोज में बराबर दीवार के एक सिरे से दूसरे तक घूमते रहते थे। नानकाऊ का दर्रा चिरकाल से चीन से दूर मगोलिया जाने वाले क़ाफलो की राह रहा है। इसी की भाति और दर्रे भी अन्य दिशाओ में जाते थे जिससे दीवार में राह बनानी पडती थी। आज तो कई जगह से तोडकर रेल और दूसरे यातायात के जरियो के लिये रास्ते बना लिये गए हैं। दीवार हमारे पास करीब ३० फुट ऊँची ह और उसका परकोटा नीचे २५ फुट, ऊपर १५ फुट चौडा है। खतरे की जगहे ठोस बनावट से मजबूत कर ली गई हैं। ऊपर ईटें लगीं हैं और बाहरी ओर दीवार की मजबूती के लिये दोहरा परकोटा दौडता है।

हम दौडते-कूदते, टीले-बिखरे ईटो और पत्थरो पर चलते, नीचे उतरे। सीढ़ियो से नीचे और नीचे, अन्त में प्राकृत भूमि, माता पृथ्वी पर आ खडे हुए।

सुख को कम न कर सके।

ट्रेन चार बजे पीकिंग को रवाना हुई। तीन घंटे जैसे तीन मिनटों में गुजर गये और होटल पहुँचते ही सब अपने-अपने कमरे को भागे। दौड़-धूप खासी हुई थी, आराम की जरूरत सबको थी।

बिस्तर में पड़ा महान् दीवार की-सी इमारतों की निरर्थकता पर मैं देर तक विचार करता रहा। क्या ऐसी इमारतें, स्वयं यह महान् दीवार ही, कभी खूनी कबीलों के हमले रोक सकीं? शायद एक हद तक। शायद किसी हद तक नहीं। जो भी हो, उनमें लगे अनन्त श्रम, असीम धन, असंख्य जीवन का नाश किसी मात्रा में क्षम्य नहीं हो सकता।

इसीलिये नया चीन इस प्रकार की इमारतों की ममता छोड़ उस प्रकार के निर्माण में प्रयत्नशील है जो काल का अतिक्रमण कर सार्वनि मानव का कल्याण करेंगे। विश्वामित्र ने उन्मुक्त घोषणा की थी—"गुह्य ब्रवीमि। न मानुषात् श्रेष्ठतरहि किञ्चित्।" (भेद की बात कहता हूँ। मनुष्य से बढ़कर कुछ भी नहीं!) इस रहस्य का भेद माओ से अधिक किसी और ने नहीं पाया।

नागर, फोटो के उन नेगेटिवों के लिये अनेक धन्यवाद जो, चित्रा लिखती है, उसे मिल गए हैं। जब मैं चीन की ओर चला था, तुम्हारे बच्चे अभी बीमार ही थे। विश्वास है कि वे अब स्वस्थ हो गए होंगे। मेरी ओर से उन्हें प्यार करना, पत्नी को नमस्कार कहना।

स्नेह।

तुम्हारा,

भगवतशरण

श्री राजेन्द्र नागर,

इतिहास-विभाग,

लखनऊ विश्वविद्यालय,

लखनऊ।

पीकिंग,

२६-९-५२

चित्रा,

बहुत नाराज होगी। तुम्हें लिखा नहीं, यद्यपि लिखता रहा हूँ। और वह भी छोटी नहीं, खासी लम्बी चिट्ठियां। नये चीन के बाबत इतना लिखना जो है। इस चीन के बाबत जिसने अपनी बेड़ियां तोड़ दी हैं। यहां सचमुच एक नया संसार खड़ा हो गया है। नये जीवन की हिलोरें सर्वत्र दिखाई देती हैं। जीवन जो गतिमान है, कर्मठ है, मशक्कत करता, हँसता है।

चीन के बारे में कुछ विचार तो रखती ही होगी। हम सबके कुछ न कुछ हैं। कुछ पहले खुद मेरे ही उस दिशा में अपने विचार थे। निहायत सुस्ती के। गतिहीन, स्वप्निल, नदिर जीवन के। ऐसे जीवन के जो युद्धपतियों और गांव के जालिम जमींदारों के लाभ किये श्रम के पसीने से तरबतर हो। जीवन जो अत्यन्त कंगाल है, सर्वथा शोषित है। मादक अफीम से झुका हुआ, अकड़ा सिर, खुले ओठ। और निःसन्देह हमारे यह विचार पीठ पर गट्ठर रखे पसीने में डूबे हिन्दुस्तान में घर-घर फिरने वाले चीनी सौदागर से बने हैं।

पर ऐसे विचार निहायत गलत होंगे। चीन अब वह चीन नहीं, बिलकुल दूसरा चीन है। एक नया आलम उठ खड़ा हुआ है, नई मानवता सिरज गई है। चीन की जमीन वही है, वही उसका आसमान है, पर दोनों के बीच की जिन्दगी बिलकुल बदल गई है। पहले से सर्वथा भिन्न है। पहले की तरह ही ऋतु के पीछे ऋतु चलती है, पहले की ही भांति हलवाहा हल चलाता है, किसान पके खेत काटता है पर जाड़े की

फस्ल का अन्न अब गिरता उसकी बखार में है, मालिक की बखार में नहीं। सो, बातें बदल गई हैं।

सो, पीकिंग भी बदल गया है। महान् नगर की मंजिलें वही हैं, पुरानी। शालीन दीवारें, आकर्षक झीलें, पार्क, प्रासाद, गढ, बुर्जियां भी पहले-से ही रहस्य का जादू लिये हुए हैं। उसी प्रकार सडकों के पीछे गलियों में शान्ति विराज रही है, पक्षियों का कलरव वही है। वैसी ही पेडों की सनसनाहट है, वैसी ही बच्चों की आवाजें, पर पीकिंग फिर भी वह नहीं है। पहले से बिलकुल भिन्न है।

अभी टहल कर लौटा हूं। साधारण निरुद्देश्य चक्कर भी इस महान् परिवर्तन को स्पष्ट कर देता है। इस पीकिंग होटल के पास ही उधर, बाएँ, सडक के पार एक खुला पार्क है। मिनट भर को रिम-झिम हुई थी, सूरज डूब रहा था। मैं उधर निकल गया था। पार्क लोगों से भरा था। लोग घास पर बैठे जहां-तहां बात कर रहे थे। औरतें सुघी बच्चों को दुलार रही थीं। तन्दुरुस्त ताजे बच्चे चिडियों की तरह चहक रहे थे। मैं भी वहीं सांझ की नमी और ओस में खडा आसमान को देख रहा था। आसमान, रुई के फैले पोले पर पोले फाडता चला जा रहा था।

रात हल्के-हल्के आसमान पर छा चली थी। भीड छोटे-छोटे दलों में आती और चली जाती। एकाध आदमी पास आते, मुझे चुपचाप देखते, हल्के से मुस्करा देते, चले जाते। चुपचाप मैं यह दृश्य देख रहा था और रात तारा-तारा गहरी होती जाती थी। चांद, जो केवल आधा खिला था, रुई के बिखरे खेतों पर सरकता जा रहा था। किसी ने मुझे छू लिया। मैं जमीन को लौटा।

स्पर्श भौतिक न था। केवल कुछ बच्चे पास खडे हो मुझे देखने लगे थे। बढते हुए सन्नाटे में किसी के निकट आ जाने से वातावरण जैसे जरा बोझिल हो जाता है वैसे ही बोझिल वातावरण की चेतना ने मुझे सचेत कर दिया। यद्यपि सन्नाटा था नहीं क्योंकि इधर-

उधर भीड अभी खासी थी। बच्चे तीन थे, कोई चार और छ साल के बीच के। उनकी मां भी पास ही खडी चुपचाप देख रही थी। मैंने झट परिस्थिति के अनुकूल आचरण किया। मुंह से हल्की सीटी बजाई और दो के हाथ थाम लिये। तीसरा लजाकर परे हट गया। यह दोनो भी शर्मीले ही थे पर वे अपनी जगह खडे रहे। वैसे ही उनकी मां भी पहले की-सी खडी रही। मेरे पास कुछ चाकलेट और टाफी थी, मैंने उन्हे देना चाहा। पर वे लेने को राजी न हुए और न उन्होने लिया। बडे ने पहले तो अपनी फ्राक की जेब में बार-बार हाथ मारा फिर वह मां के पास दौड गया, उसका बटुआ खोलने और उसे मेरी ओर खीचने लगा। मां मुस्कराती हुई और पास सरक आई। बच्चे ने बटुए की डोरी खींच ली थी। उसका मुंह खोलकर वह मुझे दिखाने लगा—उसमें टाफी और मिठाइयां थी। जाना, उन्हे इन चीजो की कमी नही। एक जो भाग गई थी वह भी पास आ गई और अपनी झुकी मां की छाती में सिर घुसाने लगी।

वह भी बटुए की डोरी खीचने लगी। मां ने उसे टाफी देकर शान्त किया। मां सुघड थी, कोमल, प्रसन्न। कुछ टाफी उसने मेरी ओर बढ़ाई। मैंने उसकी बात रखने के लिये एक ले ली। वह प्रसन्न हो उठी। उसका चेहरा खिल उठा। उसने पूछा—'इन्दुआ ?' 'हां, इडियन', और तब यह सोचकर कि शायद इन्दुआ का तात्पर्य हिन्दू से है, मैंने कहा 'हिन्दू।' फिर उसने कुछ कहा जो मै सिवा एक शब्द 'हॉपिंग' के समझ न सका।

वह और वह, सभी शान्ति के प्रेमी हैं। मैं जानता हूँ, वे सभी शान्ति के प्रेमी हैं।

धीरे से किसी ने कहा, 'होपिंग वान्से !' 'शान्ति चिरजीवि हो !' जो पास से गुजर रहे थे उन्होंने भी नारा लगाया। मैंने भी उन गम्भीर शब्दों को दोहराया। फिर उस महिला से छुट्टी ली, उसके बच्चों से हाथ मिलाया और पास के लोगों से विदा लेकर नये चीन से प्रभावित लौट पड़ा।

और 'वे' कहते हैं कि चीन शान्ति नहीं चाहता, कि चीन की शान्ति की चर्चा लोगों को बेवकूफ बनाकर वक्त हासिल करने के लिये है, कि चीन की कान्फ्रेन्सें कम्युनिस्टी फरेब है, कि चीन की जनता द्वारा सगठित शान्ति के मोर्चे सरकारी जबर्दस्ती है। कितना सफेद झूठ है यह ! जो ऐसी बेतुकी बातें कहते हैं उनको समझ लेना चाहिये कि इतना आडम्बर, सरकारी जबर्दस्ती का इतना सगठित प्रदर्शन अगर सचमुच प्रदर्शनमात्र है तब भी वह स्वाभाविक हो रहेगा। आखिर पुलिस या सरकार दिलों में उत्साह नहीं भर सकती। कम से कम चीनी जनता के शान्तिप्रिय होने में मुझे कोई सन्देह नहीं। और मैं अपने वक्तव्य को बगैर कोई रग दिये तुम्हें बताता हूँ—कोई पिता अपनी बेटी को बातें रग कर नहीं बताता—कि चीनी सचमुच शान्ति चाहते हैं, कि उनके भीतर उसकी आवाज बाहर की गरजती तोपों से कहीं ऊँची है, कि वह आवाज तोपों की गरज को चुप कर देगी।

एक साँझ डा० अलीम, अमृत और मैं घूमने निकले। जैसे ही, निरुद्देश्य। सड़क चमक रही थी। उसका आकर्षण हमें खींच ले चला, फिर जो प्रसिद्ध 'शान्ति होटल' की सुधि आई तो उधर को चल पड़े। राह मालूम न थी और न भाषा कि किसी से पूछते। पर हम चलते गये और मोड पर बाएँ घूम पड़े। एक ऊँची इमारत के सामने दो आदमी बात कर रहे थे। हमने उनसे 'शान्ति होटल' की राह अंग्रेजी में पूछी। स्वाभाविक ही वे कुछ समझ न सके परन्तु उनमें से एक ने

हमको भीतर चलने को कहा। हम उसे धन्यवाद देकर आगे बढ़े। पर उसने राह रोक ली क्योंकि उसे यह मजूर न था कि हम बगैर अपने सवाल का जवाब पाए चले जाएँ। वह हमें चेष्टाओ-सकेतो से रोककर तेजी से अन्दर गया और झट एक आदमी के साथ लौटा। यह तीसरा भी हमारी बात न समझ सका, पर वह भी हमें जाने न दे जब तक हमारे प्रश्न का उत्तर न मिल जाय। वह भी अन्दर चला गया और एक आदमी लिय लौटा। समस्या हल हो गई। वह अग्रेजी तुतला लेता था। उन्होने हमें रोक रखने के लिये बार-बार माफी मागी और अग्रेजी जानने वाले ने 'शान्ति होटल' की राह बता दी। वह स्वय हमारे साथ चला और हमारे बहुत इसरार करने पर लौटा। गजब का एखलाक है चीनियो का।

शान्ति होटल घनी आबादी के बीच ऊँचे मकानो के पीछे खड़ा है। अचरज की इमारत है। गजब की खूबसूरत, हलकी-फुलकी, ईंट, कंकरीट और धातु की बनी बिल्कुल 'माडर्न', पोख्ता और ठोस। आठ मजिल ऊँची, बीस बराबर-बराबर चौड़ी खिड़कियाँ, आज की जरूरतो से लैस। नीचे की मजिल की बैठक रुचि का अनुपम दृष्टान्त। उसके पर्दे, उसका रग और शक्ल, बड़े-बड़े मौलिक चित्र, सभी उसकी खूबसूरती के सबूत है।

हमने कनाडा के प्रतिनिधि मिस्टर और मिसेज गार्डनर से मिलना चाहा। उनसे चीनी दीवार के ऊपर पहले हम मिल चुके थे। उनकी खबर पर हम ऊपर गए। पति-पत्नी दानो तपाक से मिले। कमरा बड़ा सुन्दर था, उसका फर्नीचर आकर्षक। दीवार पर तान ह्वाग के एक भित्ति-चित्र की नकल टग रही थी, वीणावादिनी विद्याधरी की। मूल स्वय अजन्ता के अनुकरण में बना था। गार्डनर दम्पति ने हमें बताया कि उनका कमरा ठीक और कमरो की तरह है। फिर वे हमें होटल घुमाने ले चले। ऊपर और नीचे के भोजनागार, ड्राइंगरूम और बरामदे, छत और दफ्तर सभी खास ढग से बने थे। शीशे, धातु और चीनी मिट्टी की

बनी सभी चीजो पर अमन की फाख्ता बनी थी। चम्मच, काटे, छुरी, सुराही, प्लेट, सब पर, नैप्किन, चादर, तौलिये तक पर। और यह समूची इमारत महज ७५ रोज में खडी हो गई थी। पीकिंग के मजदूरों ने उसे चीन के वर्तमान मेहमानो, शान्ति-सम्मेलन के प्रतिनिधियो के लिये तैयार कर शान्ति समिति को भेंट कर दिया था।

कुछ साल पहले जो कुछ हमने पीकिंग के सम्बन्ध में पढ़ा था, उससे आज का पीकिंग बिल्कुल भिन्न है। उसका नया जन्म हुआ है, उसने जन्म की वेदना सही है और आज ससार के सब से साफ नगर तक को वह अपना सानी नहीं मानता। नि सन्देह पीकिंग आज ससार का सब से साफ नगर है। कहीं कागज का एक टुकडा नहीं, कूडे का एक तिनका नहीं, न सडको पर, न गलियो में, न उसके फुटपाथो पर। निश्चय यह कल्पनातीत है। मैंने न्यूयार्क, लन्दन और पेरिस देखा है, म उनके बीच का अन्तर जानता हूँ। न्यूयार्क की सडकों पर बेइन्तहा कूडा पडा रहता है, उसके फुटपाथ लापरवाही से फेंके अखबारो के पन्नो, टुकडो और बण्डलो से ढके रहते हैं, उसके डस्टबिन में टाइप-रायटर से लेकर सडे केले जैसी चीजें पडी सडती—गन्धाती रहती हैं। पीकिंग की सफाई इतनी असाधारण है कि वहां जाने वालो पर उसका असर हुए बिना नहा रहता, चाहे जानेवाला कितना भी लापरवाह क्यो न हो। सुनो, एक मजेदार किस्सा। राजधानी पहुँचने के दूसरे दिन हम बस में कहीं जा रहे थे। हम में बहुत सारे सिगरेट पी रहे थे पर बस के भीतर उन्हे ऐशट्रे नहीं मिली। दर्पण की-सी साफ सडको पर उन्हे सिगरेटो के टुकडे फकने की हिम्मत न पडी। तब मैंने अपनी जेब से एक खाली लिफाफा निकाला और उसमें सिगरेटो के टुकडे भर लिये। मुझे याद है कि थूकदान में डालने के पहले मुझे उस पैकेट को करीब डेढ़ घटा अपनी जेब में लिये रहना पडा था।

यह सफाई चीन की राष्ट्रीय योजना का अग बन गई है। इस प्रकार की सफ़ाई चीन के सभी नगरो में बरती गई है, पीकिंग में, मुकदन में,

तिएन्त्सिन में, नानकिंग, शघाई और कान्तोन में। गाँव तक में इसी प्रकार की सफाई की कोशिश जारी है। मचूरिया के नगरो में मक्खी, मच्छर आदि नष्ट कर देने का आरोग्य-योजना के अतिरिक्त भी एक उद्देश्य है। कीटाणु-युद्ध को बेकार कर देने के लिये चीनियो ने उन जीवो के विरुद्ध ही रण ठान दिया है जो बीमारियो के वाहक हैं। इसी विचार से उन्होने मक्खियां, मच्छर, मकड़ियां, छिपकलियां, चूहे और रोगो के कीटाणु वहन करन वाले उन सारे जीवो को मार डाला है जो परिवार का सुख, मासूम बच्चो, जवानो और बूढो को खतरे नें डाल देते हैं। यह तो खैर दुश्मन के सहारक अस्त्रो का उत्तर मात्र होने से अस्थायी प्रबन्ध है, पर जो बात चीनी जनता का स्वभाव बनकर उसके जीवन में बस जायगी, वह है स्थायी स्वच्छता के प्रति उसका आग्रह। घर, सड़कें, गलियां, बाजार, मछली की दूकानें तक सफाई की योजना का अन्तरग बन गई है। नागरिक और विशेषकर नागरिकाओ के सहयोग से सफाई की यह योजना सफल हो रही है। यह योजना वहां की जनता के आचरण का अग बन जाने से रोगो और मृत्यु के अदृश्य साधना का सफल प्रतिकार करेगी।

पीकिग ने तीन साल के अर्से में बहुत कुछ देखा है। असाधारण मात्र में उसमें परिवर्तन हुआ है। वैसे तो वह नगर सदा से सुन्दर रहा है पर इधर सदियो की जमीन-सी ठोस जमी गलीज ने उसे कुरूप और अपवित्र बना रखा था। मजदूरो ने ही उस नगर को सदियो पहले दूसरो के लिये बनाया था, आज वे ही उसे फिर से अपने लिये बना रहे हैं। वे ही जो मेहनत को पुरस्कार समझते हैं, आलस्य से घृणा करते हैं। उन्होने सैकड़ो मील लम्बी नालियां बनाई हैं, पानी के लाखो नल लगाए हैं, हजारो घरो में बिजली लाकर उन्हें चमका दिया है।

पीकिग की शक्ल आज बदल गई है। उसके प्रशस्त प्रासाद, जो कभी केवल सम्राटो के क्रीडास्थल थे, आज जनसाधारण के लिये खोल दिये गए हैं। उसके पार्को में जीवन टहलता रहा है, छोटे-बड़े बच्चे दौड़ते,

खेलते और नाचते रहते हैं। देखने वालों की आँखें निहाल हो जाती हैं। पार्क प्राय प्रतिमास बनते जा रहे हैं, झीलें प्राय प्रतिवर्ष। और इन्हें बना कौन रहा है ? मजदूरों के अलावा लाल सेना। जिस सेना ने चीन को बाहरी शत्रुओं और उनके एजेन्टों से मुक्त किया है वही उसके नगरों और देहातों को भी आज गलीज और गर्द से मुक्त कर रही है। पिछले दो वर्षों में वे सदियों बैठी गन्दगी से फावडा लेकर लडती रही हैं, वैसे ही जैसे कुम्हार चाक पर अभिराम कलसे बनाता रहा है, जैसे राज करनी से भव्य भवन खडे करता रहा है। सेना ने बेकार बैठे रहने या कत्ल के इन्तजार के लिये राष्ट्र से तनखाह लेना नामजूर कर दिया है। उसके बदले वह नगरों में उत्साहपूर्वक निर्माण करती रही है, गावों में फसल बोती और काटती रहती है।

पत्र समाप्त करने के पहले तुमसे बाजार का कुछ हाल कहूँगा। खरीदारी के सम्बन्ध में तुम्हारी उदासीनता मैं जानता हूँ। यद्यपि वह लड़कियों की खास कमजोरी है, तुम में नहीं है। इससे चाहे तुम्हें दूकानों के बाबत जानकारी में कुछ खास दिलचस्पी न होगी, फिर भी पीकिंग के बाजार का कुछ हाल सुनो।

वागफ चिंग पीकिंग के बाजार की प्रधान सडक है। मैंने कान्तोन का बाजार देखा है, पर पीकिंग कान्तोन से हर बात में बडा है। देखा कि सडक पर खासी भीड थी, दूकानें भी लोगों से भरी थीं। सरकारी दूकानों में जोर की बिक्री हो रही थी। उनके भीतर और दरवाजे में नर-नारी सकसे हुए थे। गर्मी काफी थी। सूरज चमकती कली की भाँति तप रहा था। लोग भीतर घुसने के इन्तजार में बाहर कतार में खडे थे। पास के गाँव के किसान, रात में काम करने वाले मजदूर, सैनिक, गृहपत्नियाँ। सरकारी दूकानें दस घन्टे खुलती हैं, ग्यारह बजे दिन से नौ बजे रात तक। इतवार को भी। असल में इतवार को भीड और ज्यादा हो जाती है। हफ्ते के और दिन गाहकों की संख्या करीब २२,००० होती है, इतवार के दिन ८८,००० से भी ऊपर। हफ्ते में १,५५,००० से ज्यादा

गाहक। अकेली दूकान के लिए गाहकों की यह तादाद कुछ कम नहीं। फिर दूकानों की वहां कमी नहीं और न उनमें सजाए बिकने वाले माल की। मैंने भीड़ को बगैर किसी गुस्से या परेशानी के आपस में टकराते, धक्के देते और धक्के खाते दूकान की सीढ़ियां चढ़ते देखा। जो आगे चीजें खरीद रहे थे वे पीछे वालों की ओर, देखकर मुस्करा रहे थे, जैसे कह रहे हों, हम अभी जगह कर देंगे, एक मिनट और बस हमारी खरीदारी खत्म है। लोगों में गहरा भ्रातृभाव है यद्यपि वे शायद ही कभी मिले हों। ऐसे ही मौकों पर शायद एक-दूसरे को देखा हो, पर बात तो कभी नहीं की। एक युवा लड़की, जो शायद विद्यार्थी थी, शायद मजदूर थी, एक आदमी और औरत के बीच दबी खड़ी थी। आदमी उससे हटे रहने की कोशिश कर रहा था पर मारे भीड़ के अपने को सम्भाल न पाकर अपने दबाव से उसको बचाने की बराबर कोशिश कर रहा था। क्षण भर के लिए युवती की आखें मुझ पर पड़ी। मैं जो विदेशी उसका संघर्ष देख रहा हूं। वह मुस्करा पड़ती है, जैसे आखों-आंखों से ही कहती है—कोई बात नहीं, कोई परेशानी नहीं, न कोई कष्ट हो रहा है, बात बदस्तूर है। फिर भी उसकी लाचारी से कुछ दुःखी हो जाता हूं, उसकी ओर मुस्कराने की कोशिश करता हूं। मेरा मुस्कराना वह पूरा देख नहीं पाती क्योंकि भीड़ का दबाव ढीला पड़ गया है और वह झट दूकान के भीतर चली गई है। मैं उसे और नहीं देख पाता। पर जितना ही मुझे उसकी तेजी पर विस्मय होता है उतना ही उससे सन्तोष भी। वह तुम लोगों-सी नहीं जो छिपकली देखकर काप जाय, झींगुर की आवाज सुनकर सहम जाय, कोई छुईमुई नहीं जो स्पर्शमात्र से मुरझा जाय, वस्तुतः उन्मुक्त चीनी नारी जो बवंडर बढ़ तूफान पर हकूमत करती

डिजाइनों के महिलाओं के पखे, आकर्षक छतरियां, असाधारण कांस के गिलास, किमखाब जो मलकाओ को ललचा दे, सिल्क और साटन, तैयार बने कोट, पाजामे और चोगे, और वैदूर्य शीशे तथा धातु की बनी चीजें—मँहगी और सस्ती, मँहगी से ज्यादा सस्ती। असख्य विलक्षण वस्तुएं। यहाँ यह छोटा वर्तन रखा है, जिसमें, प्रेम में असफल हो जाने के कारण छोटी साम्राज्ञी ने जहर पिया था, वहाँ वह तेज खन्जर है जिसके जरिये अनधिकारी विजेता ने औरस वारिस को अपनी राह से हटा दिया था, उधर वह जादू की लकडी है जिसने मरे को जिला दिया था, इधर यह रकाबी है जो जहर डालते ही रग बदल देती है— यह सारे जादू अब प्रभावहीन हो गए है। इनमें से कोई आज इतना पुरअसर न रहा जितना नये चीन के निर्माण का जादू जो आज असम्भव को भी सम्भव कर रहा है।

चीजें सस्ती हैं। बांस की बुनावट से सजा थरमस तीन रुपए का है, फाउन्टेनपेन छ का, सुन्दर घडियां ६० की। चावल पांच आने सेर! और अब चीज की वारीकी और क्वालिटी का ख्याल ज्यादा है। सुन्दर और 'टिकाऊ' चीजों की कीमत लोग ज्यादा देने को तैयार हैं। खरीदने की ताकत बढ गई है, खरीदारों की तादाद बराबर बढती जा रही है। फुटकल वेचने वाले एक दूकानदार से पूछा कि इस साल का रोजगार पिछले साल के मुकाबले कैसा है? जवाब मिला, रोज से ५०० रुपए की बढती, आज की २६ तारीख को।

फुटकल रोजगार में बाढ सी आ गई है। औद्योगिक उत्पादन की बढती ने मजूरों की मजूरी बढा दी है, इस्तमाली चीजों की कीमत घटा दी है। कीमतें बदस्तूर कायम रखने के लिए चीजों को भट्ठियों की आग में डालने की जरूरत नहीं पडती। गल्ले की फसल ने किसानों की आय बढा दी है, साथ ही गाहकों के लिये मोल घटा भी दिया है। [illegible] और तुफान (भ्रष्टाचार, बर्बादी और दफ्तरी सुस्ती के विरुद्ध आन्दोलन) मूल्यों के अध्ययन के अनुकूल सगठित उत्पादन और सरकारी [illegible]

के बेहतर तरीकों ने कीमतें और कम कर दी हैं। और स वैयक्तिक व्यापार व्यवसाय की आमदनी से भरपूर लाभ उठाता है। सरकारी रोजगार निजी रोजगारों को राह दिखाते हैं और खानगी उद्योगों को आर्डर तथा ठेकों द्वारा मदद करते हैं, साथ ही सौदागरों को थोड़े व्याज पर कर्ज देते हैं, जिससे वे माल थोक में नकद दाम पर सीधे कारखानों से खरीद सकें। माल का तेजी से वितरण और खरीदार के ऊपर कीमत का हल्का भार उसी का परिणाम है।

चित्रा, लगता है धुन मुझ पर सवार हो गई, क्योंकि मैं अर्थशास्त्र की खासी चर्चा करने लगा हूँ। अब मैं लिखना बन्द करूँगा जिससे तुम्हें दरों की यह नीरस तालिका पढ़ने से राहत मिले और साथ ही मुझे भी वक्त की कुछ बचत हो। इसी वक्त हमारे डेलीगेशन की बैठक है। महत्त्व की बैठक, कश्मीर की समस्या पर विचार करने के लिये। पाकिस्तान का प्रतिनिधि-मंडल आ पहुँचा है। हम चाहते हैं कि दोनों की ओर से एक सम्मिलित घोषणा करें जो शान्ति-सम्मेलन स्वीकार कर ले। हमने प्रण कर लिया है—उन्होंने पाकिस्तान की ओर से, हमने हिन्दुस्तान की ओर से—कि हम अपनी सरकारों को अमन बरकरार रखने और लड़ाई न करने को मजबूर कर देंगे।

मजाक़ को उछालते रहने वाले। ऐसे, जो पहाड़ को हिला दें। अभी हाल इंगलैंड में थे, पर जब उनकी सरकार ने अमन के लड़ाकों को पासपोर्ट देने से इन्कार कर दिया तो घर भागे, वहां आन्दोलन किया, उन्हें पासपोर्ट दिलाकर रहे। वे अब यहां हैं।

अब देखो बेटी। खाना क़ायदे से खाना। ना-नू न करना, जिससे स्वस्थ रह सको। मैं बिल्कुल स्वस्थ हूँ, प्रसन्न। शाम नम रही है, सुस्त। आसमान काले बादलों से घिरा है। हवा सन-सन कर रही है। अजब नहीं जो रात में मेंह बरसे। अगले दिनों का अन्देशा है, कहीं दुर्दिन न हो जाय। विदा। प्यार और आशीर्वाद।

तुम्हारा,
पापा

कुमारी चित्रा उपाध्याय,
वीमेन्स कालिज हॉस्टल,
काशी विश्वविद्यालय,
बनारस